हिन्दू-धार्मिक कथाओंके भौतिक अर्थ

श्री त्रिवेणीप्रसाद सिंह

बिहार - राष्ट्रभाषा - परिषद्
सम्मेलन-भवन :: पटना–३

हिन्दू-धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ

श्री त्रिवेणीप्रसादसिंह

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

वक्तव्य

हिन्दी में हिन्दू-धार्मिक कथाओं के रहस्योद्‌घाटन का प्रयत्न बहुत दिनों से होता आ रहा है। भारतीय धर्मशास्त्रियों और दार्शनिकों ने इस विषय में जो तत्त्वान्वेषण किया है, वह युक्तियुक्त एवं हृदयग्राही भी है। पंडित अम्बिकादत्त व्यास, पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र, पंडित रामस्वरूप शर्मा मुरादाबादी ('सनातनधर्मपताका'–संपादक), भारत-धर्म-महामंडल (काशी), महामहोपाध्याय मधुसूदन झा, डॉ० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आदि ने इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास किया है। किन्तु उनके मार्मिक विश्लेषण पर इस विज्ञान-युग में किसीका ध्यान नहीं जा पाता, क्योंकि उन लोगों ने भारतीय दृष्टिकोण से और शास्त्रीय पद्धति के अनुसार धार्मिक कथाओं के रूपकों तथा प्रतीकों पर विचार किया है। यदि उनके विचारों के संकलन अथवा संग्रह प्रकाशित हों तो उनकी सूक्ष्मदर्शिता और गहरी पैठ का अनुमान किया जा सकता है। यों तो पुराणों में भी हिन्दू-देवताओं के वास्तविक स्वरूप का दार्शनिक विवेचन किया गया है। त्रिदेवों के प्रतीकात्मक स्वरूप-वर्णन के अतिरिक्त गाय, गंगा, वटवृक्ष, पीपल, आमला, तुलसी आदि जड़जीवों के स्वरूप-विश्लेषण में भी अध्याय-के-अध्याय लिखे गये हैं। निस्सन्देह हमारे प्राचीन आर्य-ग्रंथों में धार्मिक कथाओं का काव्यात्मक रूप से रोचक वर्णन मिलता है। उसके भीतर जो तथ्य निहित है, वह अश्रद्धालु के शुष्क तर्क से ग्राह्य नहीं, प्रत्युत सहृदय-हृदय-संवेद्य है। हमारी धार्मिक कथाओं के आध्यात्मिक अर्थ तो हिन्दी के संत कवियों के काव्य में भी मिलते हैं। महात्मा गान्धी तो रामायण-महाभारत-गीता आदि की कथाओं का आध्यात्मिक अर्थ ही मानते थे। श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध में जो 'पुरञ्जनोपाख्यान' और 'कालकन्याचरित्र' है, उससे धार्मिक कथाओं के रूपकों के मनोवैज्ञानिक रहस्य का कुछ आभास मिल सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक के मननशील लेखक ने अनुसंधानात्मक स्वाध्याय के बल पर धार्मिक कथाओं के भौतिक तात्पर्य का स्पष्टीकरण बड़े मनोयोग से किया है। उनकी गवेषणात्मक प्रणाली में नवीनता और सामयिकता है। आशा है कि इससे वर्तमान युग के अनुसंधायकों को प्रेरणा और सहायता मिलेगी।

'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' के चौथे वर्ष की भाषणमाला का यह दूसरा भाषण है, जो सन् १९५४ ई० में १५–१६ मार्च को पटना-कालेज के बी० ए० लेक्चर-थिएटर में हुआ था और अब पुस्तकाकार में प्रकाशित होकर हिन्दी-पाठकों के समक्ष उपस्थित है। इन्हीं लेखक महोदय का ज्योतिर्विज्ञान-विषयक एक सचित्र

मौलिक ग्रन्थ (ग्रह-नक्षत्र) हम गत वर्ष प्रकाशित कर चुके हैं, जिसमें लेखक का संक्षिप्त परिचय भी सन्निविष्ट है। दोनों ही कृतियों से उनकी अध्ययनशीलता और मेधाशक्ति का परिचय मिलता है। संभवतः वे ही बिहार के सर्वप्रथम आइ० सी० एस० हैं, जिन्होंने साहित्य-सेवा की परम्परा प्रवर्तित करने का श्रेय प्राप्त किया है और इसकी आधारशिला होने से परिषद् को भी सन्तोष का अनुभव हो रहा है।

खेद है कि आरम्भ के अध्यायों के शीर्षक मात्र असंगत छप गये हैं। यह पुस्तक काशी में छपी है और इसका प्रूफ भी वहीं देखा गया। विज्ञ पाठकों से निवेदन है कि असंगति दूर करने के लिए आरम्भिक अध्यायों को सुधार लेने की कृपा करें। यथा—पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छठा।

वैशाखी पूर्णिमा (बुद्धजयन्ती)
संवत् २०१२ वि०

शिवपूजन सहाय
(परिषद्-मंत्री)

भूमिका

धार्मिक कथाओं की उत्पत्ति तथा उनके वास्तविक अर्थ के विषय में कोई भी दो विद्वान्, कदाचित् ही कहीं, एक मत हुए हों। धार्मिक कथाओं में देवीं-देवता अथवा अवतारी स्त्री-पुरुषों की उत्पत्ति एवं उनके कार्यों का विवरण रहता है। अपने विकास की एक विशेष अवस्था में, मनुष्य जाति प्राकृतिक घटनाओं की पुष्टि तथा उन्हें समझने की चेष्टा, कथाओं द्वारा किया करती है। जैसा 'मालीनौस्की' ने अपनी पुस्तक 'मिथ-इन-प्रिमिटिव-साइकोलोजी' (Myth in Primitive Psychology) में लिखा है कि ये कथाएँ जान-बूझकर मन से गढ़ी हुई कहानियाँ नहीं हैं। धार्मिक कथाओं से सम्बद्ध जातियों का इन कथाओं की सत्यता में अटूट विश्वास हो जाता है। ये कथाएँ उनकी मानसिक आवश्यकताओं को उतना ही संतोषपूर्वक पूर्ण करती हैं जितना भोजन उनकी शारीरिक आवश्यकताओं को।

मानव-विज्ञानवेत्ताओं ने आदिम धर्म की उत्पत्ति के तीन स्रोत बताये हैं—आदिम मनुष्य ने निर्जीव पदार्थों और सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, अग्नि प्रभृति प्राकृतिक विभूतियों को अपने ही जैसा प्राणवान् समझा। फिर पेड़-पौधे, नदी-पहाड़ अथवा पशु-पक्षी में पूर्वजों अथवा देवताओं की आत्मा का अनुमान करके उनकी ओर वह श्रद्धा से देखने लगा। एक देवता के अनेक गुणों से भिन्न-भिन्न देवताओं की उत्पत्ति हुई; पुनः किसी प्रतापी पुरुष ने अपने इष्टदेव को सबसे बड़ा देवता सिद्ध किया अथवा कहीं किसी दार्शनिक ने किन्हीं एक देवाधिदेव को मानने का उपदेश दिया; परन्तु आगे चलकर उन देवाधिदेव के साथ और छोटे-मोटे देवता भी मिल गये।

धार्मिक कथाओं के, विशेष कर हिन्दू धार्मिक कथाओं के, अध्ययन करनेवालों में सबसे प्रसिद्ध नाम प्रोफेसर मैक्समुलर (Professor Max Müller) का है, जिन्हें भारतीय पण्डितों ने प्रेम तथा आदर से 'मोक्ष मुल्लर भट्ट' कहना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने आर्य जातियों की भाषा तथा उनकी धार्मिक कथाओं की एकता निश्चयात्मक रूपसे सिद्ध कर दी। मैक्समुलर के विषय में उनके समालोचकों ने ऐसा प्रचार करने की चेष्टा की कि वे धार्मिक कथाओं को भाषा से उत्पन्न एक रोग—'डिजीज आफ लैंग्वेज' (Disease of Language)—मानते थे। मैक्समुलर ने अपने 'कण्ट्रीब्युशन्स टू द साइन्स ऑफ माइथोलोजी' (Contributions to the Science of Mythology) में उन मानव-विज्ञानवेत्ताओं की खिल्ली उड़ाई, जो अतिशय सभ्य आर्य जातियों की धार्मिक कथाओं का संबंध संसार की बर्बर जातियों के रीति-रिवाजों से जोड़ना चाहते थे। मैक्समुलर के अनुसार प्रारम्भिक आर्य प्रकृति के पूजक थे। उन्होंने सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु, उषा, रात्रि, वृष्टि, विद्युत आदि प्राकृतिक विभूतियों के जो नाम दिये, उन नामों के अपने-अपने लिंग अथवा वचन थे। उन

नामों का कोई-न-कोई अन्य अर्थ भी था, जिसके कारण उनके विषय में अनेक कथाओं का प्रादुर्भाव हुआ। मैक्समुलर का कथन भारतीय निरुक्तकारों के अनुसार था, जिन्होंने अपनी देव-विद्या में इसी मत की पुष्टि की।

मैक्समुलर के विरोधियों ने अनेक ऐसे दृष्टान्त दिये, जिसमें उत्तर ध्रुव-निवासी एस्कीमो अथवा दक्षिण अमेरिका, प्रशान्त सागर के द्वीप-पुञ्ज, न्यूजीलैंड तथा आस्ट्रेलिया के निवासियों में भी वैसी ही कथाएँ मिलीं, जैसी आर्यजातियों की धार्मिक कथाएँ थीं। तब ऐसा नहीं कहा जा सकता था कि इन कथाओं की उत्पत्ति भाषा के आधार पर हुई[1]। इसके पश्चात् टाइलर, स्मिथ, लैंग प्रभृति मानव-विज्ञान-वेत्ताओं ने धार्मिक कथाओं की आदिम उत्पत्ति के विषय में अपने-अपने सिद्धान्त प्रकाशित किये। इन मानवविज्ञान-वेत्ताओं में सर जेम्स जौर्ज फ्रेजर का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'गोल्डेन बाऊ' (Golden Bough) में संसार की प्रायः सभी जातियों की धार्मिक कथाओं की उत्पत्ति को, वृक्षों अथवा पौधों के विकास तथा क्षय से सम्बद्ध माना है। डाक्टर जिवोंस ने अपने 'इण्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री ऑफ रीलिजन' (Introduction to the History of Religion) में धार्मिक रीति-रस्मों से ही अधिकांश धार्मिक कथाओं की उत्पत्ति अथवा उनका रूपान्तर सिद्ध करने की चेष्टा की है।

अपनी पुस्तक 'इण्ट्रोडक्शन टु माइथोलोजी' (Introduction to Mythology)[2] में 'लेवि स्पेन्स' ने धार्मिक कथाओं को निम्नलिखित विभागों में बाँटा है—

(१) सृष्टि की कथाएँ, (२) मनुष्य की उत्पत्ति, (३) प्रलय, (४) स्वर्ग, (५) नरक, (६) सूर्य-विषयक कथाएँ, (७) चन्द्र-विषयक कथाएँ, (८) अवतारी पुरुषों की कथाएँ, (९) पशुओं की कथाएँ, (१०) किसी विशेष प्रथा अथवा धार्मिक प्रयोग का कारण, (११) पाताल-लोक अथवा यम-लोक से लौट आने की कथाएँ, (१२) देवताओं की उत्पत्ति, (१३) अग्नि-विषयक कथाएँ, (१४) तारा-विषयक कथाएँ, (१५) मृत्यु की कथाएँ, (१६) मृत आत्माओं का भोजन, (१७) कोई वस्तु अस्पृश्य क्यों हुई, (१८) किसी देवी-देवता के विभिन्न विभाग हो जाने की कथाएँ, (१९) देवासुर-संग्राम, (२०) खेती अथवा लकड़ी-लोहा इत्यादि का कार्य मनुष्य ने कैसे सीखा (२१) मनुष्य की आत्मा से सम्बद्ध कथाएँ।

प्रस्तुत पुस्तक का लेखक न तो भाषाशास्त्र का विशेषज्ञ है और न मानव-विज्ञान का। साधारण प्रशासन कार्य में संलग्न सरकारी कर्मचारी होने के नाते उसे सभी-कुछ में, किसी-न-किसी रूप में, हस्तक्षेप करने का अवसर मिलता रहा है

---

१. देखिए—इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका–माइथोलोजी (Encyclopedia Brittanica —Mytholgy.

२. प्रकाशक—George Harrap, London.

और कदाचित् आगे भी मिलता रहे। परन्तु यह पुस्तक इस विचार से प्रस्तुत नहीं की गई है।

जैसा 'करेन्यी'[१] ने युंग के साथ मिलकर लिखी हुई पुस्तक 'इण्ट्रोडक्शन टु ए साइन्स ऑफ माइथोलोजी' (Introduction to a Science of Mythology) में लिखा है—'आधुनिक वैज्ञानिक युग में जो वस्तु समझ में न आये, उसका प्रायः अस्तित्व ही नहीं है।' हमारी धार्मिक कथाओं का हमारे जीवन में अतिशय महत्त्व है, और यदि हम समझ-बूझकर उनका अध्ययन करें, तो प्राचीन धारणाओं से आधुनिक युग के जीवन में हमारा परिवर्त्तन अधिक सुगम होगा। लेखक ने इसी विचार से हिन्दू धार्मिक कथाओं को पढ़ने और समझने की चेष्टा की। लेखक का अपना यह मत है कि मैक्समुलर, लेइंग फ्रेजर, जिवोन्स आदि सभीके सिद्धान्तों में सत्य का अंश है तथा किसी विशेष धार्मिक कथा की उत्पत्ति उक्त सभी कारणों से अथवा किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के जीवन से हो सकती है। जबतक किसी धार्मिक कथा का ऐतिहासिक होना, प्रमाणों से सिद्ध न हो जाय, तबतक कदाचित् प्राकृतिक विभूतियों अथवा धार्मिक कार्य में व्यवहृत भौतिक पदार्थों (यज्ञ, वेदी, हवन, पात्र आदि) से ही उनका सम्बन्ध समझना अधिक युक्तिसंगत होगा।

यह पुस्तक विशेषज्ञों के लिए नहीं लिखी गई है। यह तो लेखक-जैसे ही साधारण मनुष्यों में धार्मिक कथाओं को समझबूझकर अध्ययन करने की अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए लिखी गई है। इस पुस्तक के निमित्त प्रेरणा देने के लिए लेखक 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' का कृतज्ञ है। लेखक का विश्वास है कि इस विषय के बहुत से विशेषज्ञ इस पुस्तक में लिखी हुई बातों से सहमत न होंगे; पर यदि एक-दो विशेषज्ञ भी इससे सहमत हुए, तो वह अपना अहोभाग्य समझेगा।

स्ट्रैण्ड रोड, पटना
रामनवमी, सं० २०१२ वि०

त्रिवेणीप्रसाद सिंह

---

१. Jung and Kerenyi , प्रकाशक—Routledge and Kegan Paul, London.

विषय-सूची

हिन्दू-धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ

प्रथम अध्याय

देवासुर

ऋग्वेद का सबसे प्राचीन उपलब्ध भाष्य श्री यास्कमुनि का 'निरुक्त' है। इसमें 'देव' शब्द की परिभाषा है—

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा। यो देवः सा देवता।[1]

अर्थात्—जो मनुष्यों को धनधान्य दे, या जो दीप्तिमान् हो या द्युतिमान् हो या जिसका स्थान द्युः अर्थात् आकाश है, वही देव है। देव ही देवता है।

निरुक्तकार ने देवताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—पृथ्वी के देवता, अन्तरिक्ष के देवता तथा आकाश के देवता। अग्नि-देवता का स्थान पृथ्वी है। वायु अथवा इन्द्र का स्थान अन्तरिक्ष है। सूर्य का स्थान द्युः आकाश है। इन ऐश्वर्यशाली देवताओं के बहुतेरे नाम हैं। इन नामों से प्रत्येक देवता के विभिन्न कर्मों का बोध होता है।[2]

द्यौस् अथवा देव शब्द जिअस, थिओस, तिवर इत्यादि रूपों से आर्य-टोलियों की सभी शाखाओं में महान् प्राकृतिक शक्तियों का द्योतक बना। निरुक्तकार के अनुसार देवताओं के नाम उनके विभिन्न कर्म के द्योतक हैं। वैदिक मन्त्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवताओं का स्वयं भौतिक अस्तित्व नहीं, वरन् वे भौतिक घटनाओं के सूक्ष्म कारण हैं। 'छान्दोग्य उपनिषद्' में जाज्वल्यमान् आदित्य के पीछे छिपे हुए कृष्ण, अर्थात् अदृश्य पुरुष को आदित्य का प्रेरक कहा गया है।

---

(१) निरुक्तम् ७।४।१५ (२) निरुक्तम् ७।२।५

देवों का प्राचीनतम विशेषण था असुर । निरुक्तकार ने असुर का अर्थ बताया है, महान् 'असु' अथवा 'प्राण' वाला अर्थात् अमरणशील । ऋग्वेद में लगभग सभी महान् देवताओं को असुर कहा गया है ।

गभीरवेया असुरः, सुनीथः, (सविता[१]) हिरण्य हस्तो असुरः, सुनीथः, (सविता[२]) बृहच्छवा असुरा बर्हणा कृतः (इन्द्र[३]) द्यौरसुरो (द्योस्[४]) त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिव (अग्नि[५]) पिता यज्ञानामसुरो विपश्चिताम् (अग्नि[६]) घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो (अग्नि[७]) गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः (अग्नि[८]) अतूर्तपन्था असुरो मयोभुः (रुद्र[९]) पूषा असुरो दधातु नः (पूषन्[१०]) असुरः पिता नः (पर्जन्य[११]) असुरो न होता (इन्द्र[१२]) जानानां यो असुरो विधर्ता (मरुद्गण[१३]) असुरो विश्ववेदा (वरुण[१४]) प्रीन्त्समूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे (पवमान सोम[१५]) सोमो असुरो वेद भूमनः (पवमान सोम[१६]) असुरो वेपते मती (अग्नि[१७]) हव एषामसुरो नक्षत (अग्नि[१८]) ।

असुर प्रचेता (वरुण[१९]) नूनं पाह्यसुर त्वमस्मान् (इन्द्र[२०])....वरुण..... असुर (वरुण[२१]) इकावां एषो असुर प्रजावान् (अग्नि[२२]) त्वा नूनमसुर (इन्द्र[२३]) प्रपस्त्यमसुर हर्यतं (इन्द्र[२४]) महो असुर (इन्द्र[२५]) ।

ऋग्वेदोक्त निम्नलिखित उद्धरणों में असुर शब्द किसी देवता विशेष की उपाधि न होकर अपने व्यापक देवत्व के अर्थ में व्यवहृत हुआ है–**असावन्यो असुर सूयतद्यो ।**[२६] **अग्निर्भरत उच्चावच । असुर इव निर्णिजम् ।**[२७] **महद् देवानामसुरत्वमेकम् ।**[२८]

ऋग्वेद में ही अन्य स्थानों पर असुर के भक्षण[२९] असुर के वीर[३०] असुर के गो,[३१] असुर के जठर,[३२] असुर के नाम (वन्दना[३३]), असुर का प्रयाण,[३४] असुर की माया,[३५] असुर का साम्राज्य,[३६] असुर की योनि,[३७] ऐसे वर्णन व्यवहार में आये हैं । इन सभी में असुर शब्द वरुण, अग्नि, द्यौस् इत्यादि देवों के ही अर्थ में व्यवहृत हुआ है। ऋग्वेदसंहिता ७।६५।२ तथा ८।२५।४ में एक ही स्थान पर मित्र तथा वरुण को देव तथा असुर इन दोनों विशेषणों से सम्बोधित किया गया है। 'ऋग्वेदसंहिता' १।६४।२ में मरुतों को 'रुद्र के असुर' कहकर सम्बोधित किया गया है ।

---

(१) १।३५।७, (२) १।३५।१०, (३) १।५४।३, (४) १।१३१।१, (५) २।१।६, (६) ३।३।४ (७) ५।१५।१, (८) ५।२७।१, (९) ५।४२।१, (१०) ५।५१।११, (११) ५।८३।६ (१२) ७।३०।३ (१३) १।५६।२४, (१४) ८।४२।१, (१५) ९।७३।१, (१६) ९।७४।७, (१७) १०।११।६, (१८) १०।७४।२, (१९) १।२४।१४, (२०) १।१७४।१, (२१) २।२७।१०, २।२८।७, (२२) ४।२।५, (२३) ८।९०।६ (२४) १०।९६।११, (२५) १०।९९।१२, (२६) १०।१३२।४, (२७) ८।१९।२३, (२८) ३।५५।१, ३।५५।२२, (२९) १।११०।३, (३०) १।१२२।१, ३।५३।७, ३।५६।८, १०।१०।२, १०।६७।२, (३१) १।१२६।२ (३२) ३।२९।१४ (३३) ३।३८।४, (३४) ५।४९।२, (३५) ५।६३।३, ७ (३६) ७।६।१ (३७) १०।२१।६।

परन्तु 'ऋग्वेद' में असुर शब्द के बुरे अर्थ के भी उदाहरण मिलते हैं। 'ऋग्वेदसंहिता' २।३०।४ में देवराज इन्द्र 'असुर के वीरों' के मारनेवाले कहे गये हैं। 'ऋग्वेदसंहिता' ६।२२।४ के इन्द्र 'असुरघ्न' अर्थात् 'असुर को मारनेवाले' हैं। 'ऋग्वेदसंहिता' ७।१३।१ में अग्नि को 'असुरघ्न' कहा गया है। 'ऋग्वेदसंहिता' ७।९९।५ में 'उरुक्रम' विष्णु को वर्चिन् नामक असुर के वीरों को मारनेवाला कहा गया है। 'ऋग्वेदसंहिता' १०।१३८।३ के इन्द्र ने 'पिप्रु' नामक 'मायावी असुर' के अजेय दुर्गों पर ऋजिश्व नामक आर्य राजा के हेतु विजय पाई थी। 'ऋग्वेदसंहिता' १०।१७०।२ के सूर्य 'दिव अभित्रहा वृत्रहा दस्युहंतम असुरहा' हैं। 'ऋग्वेदसंहिता' ८।९६।९ में इन्द्र को 'अदेव असुरों' अर्थात् 'देव विरोधी' असुरों का मारनेवाला कहा गया है। 'ऋग्वेदसंहिता' १०।१२४।५ में अग्नि को 'असुरों की माया' नष्ट कर देनेवाला कहा गया है। 'ऋग्वेदसंहिता' १०।१५७।४ के देव 'असुरों' का हनन कर के देवत्व की रक्षा करते हैं। 'ऋग्वेदसंहिता' १०।१५१।३ में देवों ने 'श्रद्धा' को 'असुरों' के सामने कर के उन पर विजय पाई।

ब्राह्मणों में एक प्रजापति के दो प्रकार की सन्तान 'देव' तथा 'असुर' के वर्णन हैं। इनमें देवता कम अथवा छोटे थे तथा असुर अधिक बड़े। इन लोकों में वे परस्पर स्पर्धा करने लगे। देवताओं ने यज्ञ में 'उद्गीथ' के द्वारा असुरों का अतिक्रमण करने का विचार किया।[1] भाष्यकार शंकर के अनुसार शास्त्रोक्त कर्म तथा ज्ञान से प्रभावित प्राण: अथवा शक्तियाँ देव हैं; क्योंकि यह 'द्योतनशील' है तथा स्वभाव अथवा अनुमान जनित प्राण: अथवा प्रेरण: 'असुर' हैं क्योंकि यह अपने ही असु: अर्थात् प्राण में रमते हैं।

यह प्रसिद्ध है कि संस्कृत का 'स' ईरानी भाषा में 'ह' का रूप ले लेता है। आर्यों की जो टोली ईरान को गई, वह 'अहुर' अर्थात् 'असुर' की ही पूजा करती रही। आरम्भ में निश्चय अन्य आर्य टोलियों की भाँति ईरानी आर्य 'देव' अथवा 'दिव' भी उन्हीं महान् शक्तियों को कहते थे, जिनको वह 'अहुर' नाम से पूजते रहे। जैसे भारत में असुर शब्द पीछे चलकर बुरे अर्थ में ही व्यवहृत होने लगा, वैसे ईरान में 'देव' अथवा 'दिव' शब्द 'चमकीले राक्षस' के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। ईरान में 'देव' शब्द के अर्थ के इस रूपान्तर का आर्यों की भिन्न-भिन्न टोलियों के आपसी झगड़ों से सम्बन्ध जान

(१) बृहदारण्यक उपनिषद् ३।१

पड़ता है। 'अवेस्ता' के यस्ना ३२।३ में 'ज़ाराथुष्ट्र' कहते हैं,— **अत् युस् देवा विश्येन्हो अकात् मनंहो स्ता चित्रम् । यश्चा वै मस् यजइते द्रुजश्चा पैरिमतोइश्चा ।'** "परन्तु हे देवो, तुम सभी अपवित्र मन से उत्पन्न हुए हो। जो मरणशील मनुष्य तुम्हें पूजेगा, उस घमंडी को द्रोही 'द्रुज' माना जायगा ।" वैदिक देवों के प्रधान इन्द्र अवेस्ता में 'अन्द्र' नामक द्रोही शक्ति बन बैठे हैं । 'बोगाज़ कुई' की खुदाइयों में एक मित्तानी शिला-लेख प्राप्त हुआ है, जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र तथा नासत्य (अश्विनीकुमार) की वन्दना है । अवेस्ता में भी इन्द्र घृणा के पात्र हैं; परन्तु विरित्रघ्न, बहराम अथवा 'राम' के नाम से विघ्नकारी अथवा आच्छादक अंधकार रूपी वृत्र के मारनेवाले (इन्द्र) की पूजा वास्तव में होती ही रही । जैसे ऋग्वेद में 'असुर' देवों का प्राचीन नाम है वैसे ही अवेस्ता में भी 'देव' पूजनीय अहुरों का प्राचीन नाम पड़ता है । यस्ना २९।४ में 'मजदा' को 'पूर्वकाल में देवों तथा मनुष्यों द्वारा किये गये कर्मों' का जाननेवाला बताया गया है ।

ईरान में तथा भारत में किस प्रकार 'असुर' 'अहुर' तथा 'देव' का भेद प्रारम्भ हुआ है, यह ठीक-ठीक कहना अत्यन्त ही कठिन है । 'हौग' के अनुसार यह भेद ईरानी तथा भारतीय आर्य टोलियों के आपसी झगड़ों का फल था ।[१] परन्तु 'डार्मेस्टेटर' प्रभृति विद्वान् इसका दूसरा ही कारण बताते हैं । इनके अनुसार प्राचीन 'असुरों' की 'माया' तथा 'असुर' शब्द में शुभ वस्तुओं के द्योतक 'सु' अक्षर के पहले नकारात्मक 'अ' का होना, ये ही दोनों भारत में इस शब्द के बुरे अर्थ में प्रयोग होने के प्रधान कारण हुए ।[२] ऋग्वेद में दैवी मरुद्गण 'असुर के वीर' कहे गये हैं; पर साथ ही इन्द्र प्रभृति देवताओं ने 'असुर के वीरों' के साथ युद्ध भी किया तथा उनपर विजय भी पाई ।

एक असुर शब्द का ही ऐसा हाल हुआ, यह बात नहीं है । ऋग्वेद में जहाँ (वरुण आदि) असुरों की माया का श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है, वहाँ इन्द्र 'मायी (मायावी) दानव (जलनिरोधक वृत्र) की माया' को अपने वज्र से छिन्न करते हैं ।[३] इन्द्र ने दानव (जल-राशि 'दानु' के पुत्र जलनिरोधक वृत्र) को मारा ।[४] परन्तु ऋग्वेद में ही देव-मरुतों को 'सुदानव' अर्थात् सुन्दर दानव कहकर बारंबार सम्बोधित किया गया है ।[५] अग्नि[६], वरुण, मित्र,

---

1. Essays on the Religion of the Parsis– p 272
2. Religion and Philosophy of the Veda (Keith). Chapter 15

(३) २।११।१० (४) ५।२९।४, ५।३२।१, (५) १।१५।२, १।२३।९, १।३९।१०, १।४०।९, १।४४ १४, १।६४।६, १।८५।१०, १।१७२।१--३, २।३४।८, इत्यादि, (६) १।४५।१० ।

अर्यमा[१] ये सभी देवता सुदानव कहे गये हैं। निरुक्तकार ने दानव का अर्थ (जल का) दान देनेवाला बताया है।[२] यहाँ मार्के की बात यह है कि 'दानवों' के 'राजा' बलि पुराणों में अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं। 'मोक्षमुल्लर' के अनुसार 'ज़िग्रस' की स्त्री तथा 'परसिग्रस' की माता 'दानाई' भारतीय दानु अर्थात् वृत्र की माता थी, जिसका भौतिक रूप अंधकार है। अंधकार से ही द्युतिमान् देवों की उत्पत्ति होती है, अतः अंधकार रूपिणी 'दानु' का द्युतिमान् अथवा दानवान् देवों की माता होना, किसी प्रकार असंगत नहीं है।[३] पुनः द्योतनशील देवों की विरोधी शक्तियाँ भी इसी अन्धकारमय 'दानु' से उत्पन्न हुई होंगी। अतिप्राचीन काल में देव, असुर तथा दानव प्रकृति की महान् शक्तियों के प्रेरक होने के कारण परस्पर सम्बद्ध थे, यहाँ तक कि एक ही देव-विशेष को असुर तथा दानव भी कहा जाता था। ऋग्वेद में हिरण्याक्ष नाम से सूर्य की प्रार्थना है . . . 'हे सविता (सूर्य) देवता ! जिससे आठ दिशाएँ, तीन लोक तथा सात नदियाँ प्रकाशित हैं, जो 'हिरण्याक्ष' अर्थात् सोने के रंग की आँखवाले हैं, या चमकीली आँखवाले हैं, यहाँ आइए तथा दानशील यजमान को मनोवांछित रत्न दीजिए।"[४]

ऋग्वेद में हिर य (सुवर्ण) का देवताओं से विशेष सम्बन्ध है। सविता देव हिरण्याक्ष हैं तथा हिरण्यहस्त (सोने के हाथवाले) भी हैं।[५] अग्निदेव हिरण्यकेश (सोने जैसे केशवाले) हैं।[६] विश्वेदेव हिरण्यकर्ण तथा मणिग्रीव (अर्थात् कान में सोने का कुण्डल तथा गले में मणि पहननेवाले) हैं।[७] अग्नि देव की जिह्वा भी 'हिरण्य' की ही है[८] तथा दाँत भी[९]। **अश्विनीकुमार हिरण्यत्वक्** हैं।[१०] मेघस्थित् वन रूपी 'भुरण्यु' अग्नि हिरण्यपक्ष है।[११] अश्विनीकुमार स्वयं सोने के पंखवाले हिरण्यपर्ण हैं।[१२] वज्री इन्द्र भी हिरण्यवाहु हैं।[१३] अश्विनीकुमारों के रथ का 'अक्ष' 'हिरण्य' है।[१४]

परन्तु जहाँ सभी महान् वैदिक देवताओं का हिरण्य से इतना घना सम्बन्ध है, वहाँ देवशत्रु (आच्छादक) वृत्र के अनुचर भी "**हिरण्येन मणिना शुम्भमाना**" हैं।[१५] पुराणों में वैदिक सूर्य का 'हिरण्याक्ष' रूप दैत्य अथवा असुर हिरण्याक्ष बन बैठा। फिर भी सूर्य देवता पूजा के पात्र रहे। इसमें कोई विशेष आश्चर्य नहीं है; क्योंकि निकटवर्ती आर्य देश ईरान में इन्द्र (अथवा अन्द्र वा इन्दर) तो

---

(१) १।१४१।६ (२) निरुक्तम् १०।१।६, (३) Contributions to the Science of Mythology, Vol II, P 525. (४) अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्रीधन्वयोजनासप्तसिन्धून्। हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे नार्याणि ऋ० सं० १।३४।८। (५) १।३५।१०, (६) १।७६।१, (७) १।१२२।१४, (८) ६।७१।३, (९) ५।२।३, (१०) ५।७७।३ (११) १०।१२३।६ (१२) ४।४५।४ (१३) ७।३४।२, (१४) ८।५।२६ (१५) १।३३।८।

'अहुर' तथा मानवों के शत्रु बन गये; पर 'विरीत्रघ्न' के रूप में विघ्न अथवा आच्छादन पर विजय पानेवाले 'अहुर' की पूजा होती रही।[१]

ऋग्वेद में देवराज इन्द्र का प्रधान शत्रु 'वृत्र' है। वृत्र शब्द का अर्थ है--'घेर कर रखनेवाला'। वृत्र जल को घेर कर रखता है। इन्द्र उसका वध करके उस जल को पृथ्वी पर लाते हैं। ऋग्वेद में वल, अर्बुद तथा पणि--ये भी वृत्र के समान गो (जल, प्रकाश, पृथ्वी अथवा कृषि) को रोक कर अथवा घेर कर रखनेवाले शत्रु हैं। जिनसे इन्द्र तथा अन्य देवता (जो असुर भी हैं) युद्ध करते हैं। वृत्र 'दानु' का पुत्र दानव है; पर स्वयं वृत्र का भी नाम दानु है। वृत्र के मारनेवाले इन्द्र तथा विष्णु के सहायक मरुद्गण भी दानव हैं अर्थात् 'दानु' रूपी अन्धकार के पुत्र हैं। इन्द्र तथा वृत्र के आकाशिक उद्भव के इतने लक्षणों के होने पर भी अंगरेजी पुस्तक 'प्रिहिस्टारिक इण्डिया' के लेखक स्टुअर्ट पिगट ने वृत्र अथवा बल के वध तथा जल की धारा बहाने का अर्थ आर्य-सेनाओं द्वारा सभ्य अनार्यों के बाँधों को तोड़ कर जल द्वारा उनकी बस्तियों को तहस-नहस करना समझा है। परन्तु, मित्तानी राजाओं द्वारा इन्द्र की पूजा तथा विरीत्रघ्न, वाहागन, बहराम अथवा राम के रूप में ईरान एवं आरमीनिया में इन्द्र की पूजा, इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करते।[२]

ऋग्वेद में देवताओं तथा दास अथवा दस्युओं के युद्धों का वर्णन अवश्य है, जिनके पुरों को देवताओं ने जीत लिया। सम्भवतः यह दस्यु उस काल के अनार्य नेता थे। पर इनके साथ ही 'रक्ष, यातु तथा यातुधान' नाम के शत्रुओं का भी वर्णन है। इन्हें मनुष्यों का शत्रु कहा गया है तथा इनसे रक्षा के लिए देवताओं की प्रार्थना की गई है। इनके वर्णन हिंसक पशु, लुटेरे, व्यभिचारी, स्त्री-पुरुष, रोग, प्रभृति जैसे हैं तथा लगभग सभी (असुर) देवों से इन आपदाओं के निराकरण के लिए प्रार्थना की गई है। सूत्रों में भी राक्षस देवों से ही नहीं, असुरों से भी अलग माने गये हैं। यथा--'**याभिर्देवा असुरानकल्पयन् यातून्मनून् गन्धर्वान् राक्षसश्च।**'[३]

देव तथा असुर स्पष्ट ही महान् प्राकृतिक शक्तियों के नाम थे। भारत में देव दिव्य तथा हितकारी शक्तियों का नाम रहा एवं 'असुर' नाम अंधकार, आच्छादन अथवा अहित करनेवाली शक्तियों के लिए व्यवहार में आने लगा। ये शक्तियाँ सजीव एवं ऐश्वर्यशालिनी थीं। अतः इनके लिए 'असुर' नाम का प्रयोग

---

(1) Essys on the Religion of the Parsis Haug p 268
(2) Mythology of all Races-Iranian-Cornoy-p 271.
(३) कौशिगृह्यसूत्र १३।१०६

ठीक ही अर्थ में हुआ । परतु 'दैवी' शक्तियों के 'दिव्य' गुणों पर अधिक ध्यान देने के कारण क्रमशः लोग इस बात को भूल गय कि जो देवता हैं, वेही सजीव 'असुर' भी हैं।

पराक्रमी एवं तेजस्वी 'देव' तथा महाबलशाली 'असुर' इस प्रकार क्रमशः एक दूसरे से पृथक् हो गये। उपनिषदों की सूक्ष्म विचारधारा ने उन्हें मनुष्य की ही सुप्रवृत्तियों तथा कुप्रवृत्तियों का रूप दिया तथा पुराणों में वे मनुष्य की भाँति हाथ-पाँव-मुहँवाले देवासुरों के रूप में आये। फिर 'असुर' के 'अ' को नकारार्थक मानकर देवों को 'सुर' कहा जाने लगा।

उपनिषद्कार ने देवासुर-संग्राम का अत्यन्त ही सरल वर्णन किया है। देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त करने के हेतु वाक् से उद्गान करने के लिए कहा। उसने जो अपने में भोग था, उसे देवताओं के लिए गान किया तथा 'कल्याण' को अपने लिए गाया। असुरों ने यह जान कर 'वाक्' को पाप से विद्ध कर दिया। तब से ही निषिद्ध भाषण पाप है। देवताओं ने इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय, चक्षु, श्रोत्र (कान) तथा मन से उद्गान करने के लिए कहा एवं सभी स्वार्थ के कारण असुरों द्वारा पाप से विद्ध हो गये। यह देख कर देवताओं ने मुख्य प्राण से उद्गान करने को कहा। असुरों ने उसे भी पाप से विद्ध करना चाहा; पर 'जिस प्रकार पत्थर से टकराकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है', उस प्रकार ही वे सब असुर विध्वस्त हो गये। देवताओं की विजय हुई।

ब्राह्मणकाल में जब देव तथा असुर ये दोनों अलग हो गये तब भी उनके गुणों का पूरा बँटवारा न हो सका। महाकाव्य तथा पुराणों के इन्द्र और वरुण में 'आसुरी माया' थी तथा बलि, प्रह्लाद इत्यादि 'असुर' राजाओं में अनेक दैवी गुण वर्त्तमान थे।

श्रीमद्वाल्मीकि की रामायण में 'सुर' तथा 'असुरों' का एक और भेद दिया है। समुद्रमन्थन में जब वरुण की कन्या 'सुरा' निकली तब उसे अदिति के पुत्रों ने ग्रहण कर लिया; पर दिति के पुत्रों ने उसे ग्रहण नहीं किया। इसीलिए वे क्रमशः 'सुर' तथा 'असुर' कहलाये। ऋग्वेद में सुरा का वर्णन है; परन्तु सुर शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं है।

द्वितीय अध्याय

समुद्र-मंथन

देवताओं तथा असुरों ने मिल कर समुद्र का मंथन किया था। इसका प्राचीनतम वर्णन श्रीमद्वाल्मीकि रचित रामायण के बालकाण्ड के ४५वें सर्ग में है। रामलक्ष्मण जब मिथिला को जाते हुए गंगा के उत्तरी तट से कुछ दूर 'विशालपुरी' अर्थात् अर्वाचीन 'वैशाली' के समीप पहुँचे, तब उन्होंने विश्वामित्र से उस नगरी का इतिहास पूछा। विश्वामित्र ने अति प्राचीन 'विशाला' नगरी की कथा कहते समय प्रसंगवश 'दिति' तथा 'अदिति' के पुत्रों द्वारा समुद्रमंथन तथा उससे हलाहल विष, धन्वन्तरि, अप्सराएँ, वारुणी सुरा, अश्वश्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ मणि तथा अमृत की उत्पत्ति का विवरण बताया। अमृत के लिए 'दिति' तथा 'अदिति' के पुत्रों में युद्ध हुआ, जिसमें दिति के पुत्र मारे गये और 'पुरन्दर' (पुरों को गिरानेवाले) इन्द्र को सभी लोकों का राज्य मिला।[1] आंशिक रूप में यही वर्णन महाभारत में है तथा कुछ रूपान्तर सहित अधिकांश पुराणों में भी।

'समुद्र' शब्द का अर्थ ऋग्वेद काल में इसके आधुनिक अर्थ से बहुत-कुछ भिन्न था। निरुक्तकार ने 'समुद्र' की व्याख्या अनेक प्रकार से की है। '**समुद्रवन्त्यस्मादापः**'—जिससे आपः—जल, तरंग, फेन अथवा वाष्प के रूप में ऊपर की ओर उठे वह समुद्र है। "**संमोदन्तेऽस्मिन्भूतानि**"—जिसमें सभी जीव प्रसन्न होकर रहें, वह समुद्र है। "**समुदको भवति**"—'उद्र' अर्थात् 'उदक्' का समूह समुद्र है। "**समुनत्ति इति वा**"—वर्षा से पृथ्वी को जो भिगोए वह समुद्र है।

ऋग्वेद का समुद्र एक 'ऊपर' था और एक 'नीचे'। '**आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापिदेव सुमतिं चिकित्वान्। स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि।**'[1] (ऋ० सं० १०।९८।५)। आर्ष्टिषेण देवों की सुमति जान

(१) रामायण १।४५।१६–४५

कर होत्र कर्म करने बैठा तथा उसने ऊपर के समुद्र से नीचे के समुद्र तक जल की सृष्टि की। **"तस्याः समुद्रा अधि विक्षरन्ति"** (ऋ० सं० १।१६४।४२)--उस (अग्निहोत्रादि कर्म) से ही 'समुद्र' से जल गिरता है।

यह ऊपर तथा नीचे के समुद्र प्राचीन जातियों की भुवन संस्था के आवश्यक अंग हैं। विशेषज्ञों के विचार में इस जलमयी भुवनसंस्था (Water Cosmogony) की उत्पत्ति प्राचीन बैबीलोन के समुद्रतटवर्ती नगर 'एरिदू' में हुई। बैबीलोन के लोग सारे पदार्थों को समुद्र के जल से ही उत्पन्न हुआ मानते थे। उनके विचार में पृथ्वी चारों ओर जल 'अप्सु' से घिरी थी। इसके विपरीत बैबीलोन के ही 'निपुर' नगर में, जो समुद्र से दूर था, एक दूसरे प्रकार की भुवनसंस्था निकली। इस भुवनसंस्था में पृथ्वी एक पर्वत के समान थी, जिसके शिखर पर देवता निवास करते थे। इन दोनों भुवनसंस्थाओं के सम्मिश्रण से बैबीलोन की मिश्रित भुवनसंस्था निकली, जिसके अनुसार पृथ्वी तथा इसके ऊपर का आकाश रूपी ठोस चंदोवा नीचे, ऊपर तथा चारों ओर जल से घिरा था। सूर्य चन्द्रमा तथा तारागण 'ऊपर के समुद्र' से निकल कर आकाश पर अपने-अपने लिए बनाये हुए रास्ते पर चल कर फिर उसी समुद्र में प्रवेश कर जाते थे।[1]

भुवनसंस्था में भेद होने पर भी अधिकांश प्राचीन देशों में जल (आपस्, आपः, अप्सु) से ही विश्व की उत्पत्ति मानी गई है। जल को ही विश्व का मातृत्व प्राप्त था। 'ऋग्वेद संहिता' के निम्नोक्त मन्त्र इस प्रसंग में विशेष महत्व रखते हैं--

"अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृंचतीर्मधुना पयः॥ अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥ अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः॥ अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः॥ अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः॥ आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे॥" १।२३।१६-२१

"जल से हमारी उत्पत्ति है, अतः जलराशि हमारी कल्याणकारिणी माँ है। जल से ही दुग्धादि मधुर पदार्थ होते हैं। जो जल सूर्य में है अथवा जिस जल में सूर्य है, वह हमें यज्ञ (कर्म) की ओर प्रेरित करे। जिन जलाशयों में हमारी

(1) Early Astronomy and Cosmology-C. P. S. Menon-George Allene Unwin-London p. 24

गौएँ जल पीती हैं, वह हमारे लिए देवी तुल्य हैं। हम उनकी आराधना करते हैं। हमें नदियों को हविप्रदान करना चाहिए। जल में अमृत है। जल में ओषधियाँ हैं। जल की प्रशंसा के लिए देवता शीघ्रगामी (वाजिन्=शीघ्रगामिन् =युद्धशील) होते हैं। सोम देवता ने मुझ से कहा है कि जल (अप्सु) में विश्व की सभी ओषधियाँ हैं। जल में ही 'विश्वशंभु' अग्नि भी है। जल ही विश्व के चिकित्सक हैं। जल से ही वह रोग निवारक ओषधियाँ निकली हैं, जिनके व्यवहार से (दीर्घायु होकर) हम चिर काल तक सूर्य को देख सकेंगे।"

इन मन्त्रों में जलराशि से अमृत की उत्पत्ति, इस 'अमृत' के लिए देवताओं का शीघ्रगामी (अथवा युद्धशील) होना, जल के साथ विश्वचिकित्सक 'धन्वतरि' का सम्बन्ध, इन सभी वृत्तान्तों के बीज हैं। जल से अग्नि का उत्पन्न होना यों तो असंगत मालूम होता है; पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। ऋग्वेद में तो अग्नि का एक नाम ही 'अपान्नपात्' जल की सन्तान, है। मेघों में जलराशि के बीच विद्युत्स्वरूप अग्नि वर्तमान है तथा काष्ठ की उत्पत्ति जल से होने के कारण काष्ठ के अन्तर्गत अग्नि भी जल की ही सन्तान हुई। रामायण में समुद्र-मंथन के वर्णन में 'हालाहल विष' को अग्नि के समान बताया गया है, जिसे धारण करने से 'शंभु' का कंठ मेघ के समान नीला पड़ गया। ऋग्वेद में स्वयं अग्नि अपने कल्याणकारी गुणों के कारण विश्वशंभु है।

जल से निखिल विश्व की उत्पत्ति हुई, ऐसा भारत ही नहीं, लगभग सभी प्राचीन देशों में माना जाता था। ईरान के प्रधान देवता 'अहुर माज़दा' ने जल से विश्व की सृष्टि की। बैबीलोन में 'या' देवता ने 'अप्सु' से ही विश्व की सृष्टि की। मिस्र के 'ओसाइरिस' तथा 'आइसिस' दोनों ही देवताओं के अश्रुबिंदु से उभिद् तथा जंगम जीवों की उत्पत्ति मानी जाती थी[१]। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में सृष्टि का क्रम इस प्रकार बताया गया है—"**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।**....."[२] उस आत्मा से ही आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधियाँ, ओषधियों (वनस्पति) से अन्न, अन्न से पुरुष। यहाँ जल से अग्नि का होना न मानकर अग्नि से ही जल का होना समझा गया है। यह भौतिक पदार्थों का अवलोकन किये विना ही

---

१. Myths of Babylon and Assyria. D. A. Mackenzie p. 44

(२) तैत्तिरीयोपनिषद्–ब्रह्मानन्दवल्ली–२।१

आत्मा से आरंभ कर के क्रमशः स्थूलतर पदार्थों की शृंखला बनाने का फल है। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में सबसे पहले जल की ही उत्पत्ति बताई गई है। यह निम्नोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जायगा--"पहले यहाँ कुछ भी नहीं था। यह सब मृत्यु से ही आवृत था। यह अशनाया (क्षुधा) से आवृत था। अशनाया ही मृत्यु है। उसने आत्मा से युक्त होना चाहा। उसने अर्चन करते हुए आचरण किया। उसके अर्चन करने से आप हुआ। अर्चन करते हुए मेरे लिए 'क' (जल--सुख) प्राप्त हुआ, यही अर्क का अर्कत्व[१] है। 'आप' ही अर्क हैं। उन आपों का जो शर (स्थूल भाग) था, वह एकत्र हो गया। यह पृथिवी हो गई। उसके उत्पन्न होने पर वह (मृत्यु) थक गया। उस थके और तपे हुए मृत्यु रूप प्रजापति की देह से उसका सारभूत तेज (अग्नि) प्रकट हुआ[२]।" बृहदारण्यक में ही यज्ञ-सम्बन्धी 'अश्व' के विषय में **"समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः"** ऐसा कहा गया है, अर्थात् समुद्र ही इस 'अश्व' का बन्धु तथा उत्पत्ति स्थान है।[३] इस यज्ञ-सम्बन्धी अश्व का उषा शिर है, सूर्य नेत्र हैं,......संवत्सर आत्मा है.... इत्यादि।[४] स्पष्टतः यह अश्व कोई साधारण पशु न होकर निखिल ब्रह्म का रूप है। इस अतिप्रसिद्ध अश्व की 'योनि' पृथ्वी तथा आकाश को सब ओर से घेर कर रखनेवाला वैदिक 'समुद्र' है। जब पृथ्वी की ही उत्पत्ति समुद्र से हुई, तब पृथिवी के रत्न मणिश्रेष्ठ कौस्तुभमणि का भी समुद्र से निकलना स्वाभाविक था। ऋग्वेद में वृत्र के अनुचर तथा विश्वेदेव दोनों ही 'मणि' से सज्जित[५] कहे गये हैं।[६] दोनों का स्थान अन्तरिक्ष अथवा समुद्र ही है।

'समुद्र' से सभी कुछ की उत्पत्ति मन्थन द्वारा हुई। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में सोमरस के पात्र को मन्थि-पात्र कहा गया है तथा यजमान को मन्थी।[७] यजुर्वेद (७।१८) में प्रजापति अर्थात् सृष्टि के उत्पादक को मन्थी कहा गया है। दूध या दधि के मंथन से मक्खन या घृत निकलता है। अरणि के मंथन से अग्नि का प्रादुर्भाव होता है। 'समुद्र' से हालाहल, अमृत इत्यादि उत्पन्न हुए, तो अवश्य इसके लिए 'समुद्र' का मंथन किया गया। यह स्वभावतः महाशक्तिशाली देवासुरों ने ही किया। मंथन के लिए मथानी चाहिए तथा एक रज्जु। मथानी मंदर पर्वत बना जो 'एरिदू-निपूर' के मिश्रित भुवनसंस्था के अनुसार 'समुद्र' में सारे लोगों को धारण करके खड़ा है। पर रज्जु के लिए तो किसी भौतिक पदार्थ की बनी रस्सी अपर्याप्त होती। यहाँ इस 'समुद्र' में स्थित

---

(१) बृ० उ० २।१ (२) बृ० उ० २।२ (३) बृ० उ० १।२ (४) बृ० उ० १।१ (५) ऋ० सं० १ ३३।८
(६) ऋ० सं० १।१२२।४ (७) ऐ० ब्रा० १।१।१।२

'सर्प' की कल्पना स्वाभाविक थी। समुद्रमन्थन की कथा के प्रचार के बहुत समय पूर्व से भारत ही नहीं, लगभग सभी प्राचीन देशों में आकाश, अन्तरिक्ष अथवा समुद्र में विशालाकृति सर्पों की कल्पना की गई थी। ऋग्वेद में इन्द्रशत्रु जलनिरोधक वृत्र को 'अहि' कहा गया है। निरुक्तकार ने अहि की व्याख्या इस प्रकार की है—"**अहिरयनात् एत्यन्तरिक्षे। अयमपीतरोऽहिः। एतस्मादेव। निर्ह्रसितोपसर्ग आहन्तीति।**"[१] अहि वह है, जो आये (अन्तरिक्ष से—अर्थात् मेघ से)। दूसरा आनेवाला सर्प है। हनन करनेवाला हिंसक भी अहि है। अहि की अहिर्बुध्न्य (अन्तरिक्ष स्थित अहि) के रूप में देवताओं के साथ-ही-साथ प्रार्थना भी की जाती थी।[२] ईरान का 'अज्हि दह्हाक' कदाचित् वहाँ का कोई अत्याचारी शासक था; पर बैबीलोन में एक विशाल सर्पाकार समुद्री जीव बैबीलोन के प्रधान देवता 'या' का रूप माना जाता था।[३] चीन में तथा जापान में सर्परूप दैवी शक्तियों की पूजा होती आई है। मिस्र के 'महादेव' ओसाइरिस का एक रूप 'पृथ्वी को घेर कर समुद्र (ओकीनोस) में रहनेवाला मण्डलाकार' सर्प था।[४]

'अथर्ववेद' में प्रत्येक दिशा एक-न-एक सर्प से रक्षित कही गई है। पूर्व दिशा का रक्षक 'असित' (कृष्णवर्ण) सर्प है। दक्षिण दिशा का रक्षक 'इराजी' नामक (टेढ़ी कुण्डलीवाला) सर्प है। पश्चिम दिशा का रक्षक 'पृदाकू' (कुत्सित् शब्द करनेवाला) सर्प है। उत्तर दिशा का रक्षक 'स्वज' नामक (स्वजनशील) सर्प है। ध्रुवा दिशा (अर्थात् खगोल के ध्रुव विंदु की ओर की दिशा) का रक्षक 'कल्माषग्रीव' नामक (नीली गर्दनवाला) सर्प है। उर्ध्वा (ऊपर की) दिशा का रक्षक 'श्वित्र' नामक श्वेतवर्ण सर्प है। चीनी ज्योतिष तथा बैबीलोन के ज्योतिष में यह सर्प बहुधा तारामंडलों के ही अनुमित रूप थे। भारत में भी गीता के रचनाकाल तक तो अवश्य ही यह तारामंडलों से सम्बद्ध हो चुके थे। अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के विराट् स्वरूप में ऋषियों (ताराओं) के साथ-साथ दिव्य उरगों (अर्थात् सर्पों) को भी देखा था। "**पश्यामि देवांस्तव देव देहे। सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्। ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।**"[५]

खगोल के उत्तर ध्रुव के समीप ही एक तारामंडल 'ड्राको' नाम का है, जो ध्रुवविंदु को लगभग तीन ओर से घेरे हुए है। अब से दो-तीन हजार

(१) निरुक्तम् २।५।१७ (२) ऋ० सं० ७।३४।१७ (३) Myths of Babylon and Assyria –p 62 (४) Myths of China and Japan–D. A. Mackenzie. (५) गीता–११।१५

वर्ष पूर्व भी खगोल का उत्तर ध्रुव इसी मंडल के समीप था। देवताओं का निवासस्थान 'मन्दराचल' रूपी ठोस आकाश, जो सभी ओर 'समुद्र' से घिरा है, सदा घूम रहा है तथा सर्पाकार 'ड्राको' नामक तारामंडल इस महान् 'मथानी' की धुरी के चारों ओर रज्जु के समान लिपटा है। यही मंडल वास्तव में 'वासुकि नाग' है या नहीं, यह निश्चित रूप से कहना सम्भव नहीं। विष्णु के शय्यारूप शेषनाग का वर्णन इस तारामंडल से अधिक मिलता है, जैसा आगे बताया जायगा। प्राचीन भुवनसंस्था के अनुसार 'खगोल' (मन्दराचल) स्थिर था एवं सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे उसकी परिक्रमा करते थे। समुद्रमन्थन उस काल की कल्पना है, जब मंदराचल स्थिर न होकर भ्रममाण था तथा उसके इस भ्रमण से ही 'समुद्र' का मन्थन हुआ, जिससे हालाहल विष, अमृत इत्यादि की उत्पत्ति हुई। समुद्रमन्थन का वासुकि सर्प मिस्र के ओसाइरिस सर्प की भाँति पृथ्वी को घेर कर रहनेवाला काल्पनिक महान् सर्प था।

तृतीय अध्याय

अदिति और दिति

देवमाता अदिति की वन्दना ऋग्वेद में निम्नलिखित प्रकार से की गई है—

"अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदिति र्माता स पिता स पुत्रः । विश्वेदेवा अदिति पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।" (१।८९।१०)

"अदिति आकाश है, अदिति अन्तरिक्ष है, अदिति माता है, अदिति पिता है, अदिति माता-पिता का पुत्र भी है । विश्व के देवता अदिति हैं । पाँच जातियाँ भी अदिति हैं । जन्म अदिति है । जन्म का स्थान भी अदिति है ।" पाणिनि के अनुसार अदिति सृष्टि का अखण्डनीय आधार या अधिकरण है । ऋग्वेद में ही अन्यत्र अदिति के विषय में ऐसा वर्णन है—**"दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणाविवाससि । अतूर्तपन्थाः पुरुरथोअर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ।"** (१०।६४।५)

"दक्ष (अर्थात् समर्थ सूर्य) के जन्म होने पर अदिति ने राजमान मित्र तथा वरुण को अपने-अपने कर्म में लगाया तथा निश्चित पथवाले अर्यमा को भी अपनी सात प्रकार की किरणों के साथ अपने नाना प्रकार के कार्यों में संलग्न किया ।" जैसा आगे बताया जायगा, मित्र तथा वरुण सूर्य के प्रातः-कालीन तथा सन्ध्याकालीन रूप हैं तथा 'अर्यमा' दिन का सूर्य देवता है । अदिति द्वारा ही ये अपने कार्यों की ओर प्रेरित हैं ।

ऋग्वेद के ही 'दाक्षायणी सूक्त'[१] में सृष्टि का जो क्रम दिया है उसका हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है—"अब हम देवताओं की उत्पत्ति की कथा स्पष्ट रूप से कहते हैं । ...... देवताओं के पहले असत् था । असत् से सत् हुआ । इसके उपरान्त आशाएँ अर्थात् दिशाएँ उत्पन्न हुईं । दिशाओं के पश्चात् 'उत्तानपद' (सृष्टि वृक्ष) उत्पन्न हुआ । 'उत्तानपद' से भूलोक (पृथ्वी) उत्पन्न हुआ ।

(१) १०।७२

आशा अर्थात् दिशाओं से भुवर्लोक (आकाश) उत्पन्न हुआ । अदिति से दक्ष की उत्पत्ति हुई । फिर दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई । दक्ष की पुत्री अदिति से ही अमरणशील तथा स्तुति के योग्य देवता उत्पन्न हुए ।" अदिति केवल देवताओं की ही नहीं, समग्र विश्व की माता हैं । ऋग्वेद ७।१०।४ में अग्नि से विश्वजन्या अदिति का आवाहन करने को कहा गया है । अदिति का माता तथा पुत्री होना असंगत नहीं; क्योंकि जगत्पिता तथा जगन्माता में से कौन पहले आया, यह कैसे कहा जा सकता है ?

मिस्र में आकाश की देवी 'नुट' ने 'अपने शरीर से ही सभी प्राणियों को बनाया था[१] ।' मिस्री पौराणिक कथाओं के अनुसार "वायुमंडल के 'शु' देवता ने दैवी 'गोनुट' को अपने पावों पर खड़ा कर दिया; फिर उससे लाखों की संख्या में ताराओं की उत्पत्ति हुई[२] ।" 'नुट' देवताओं की माँ थी; परन्तु 'शु' देवता की स्त्री भी थी[३] ।" चीन में भी नव देवताओं की माता 'नुची' आदिम जलराशि 'अपस्' की ही देवी है, जिस अपस् से निखिल विश्व की उत्पत्ति हुई[४] ।

अदिति आकाश अथवा पृथ्वी नहीं है; क्योंकि अदिति आकाश भी है तथा पृथ्वी भी । इसी प्रकार अदिति अन्तरिक्ष भी नहीं है । जो आकाश अन्तरिक्ष, पृथ्वी, ग्रह तथा नक्षत्रों से परे है, वही आदि सत्ता अदिति है । फिर भी आर्यों के आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर 'कः'देव हिरण्यगर्भ थे । अदिति का व्यक्तित्व मातृपूजक समाजों की प्रधान देवी जैसा दीख पड़ता है । यह कदाचित् प्रागैतिहासिक आर्य-समाज की स्वतन्त्र कल्पना नहीं है । मिस्र बैबीलोन इत्यादि के लोग नगरों में स्थिर जीवन व्यतीत करते थे, जहाँ सामाजिक शान्ति के लिए स्त्रियों का आदर करना आवश्यक समझा गया । आर्यों का रहन-सहन इससे भिन्न था । उनका कुशल-क्षेम उनके पुरुष नेताओं की युद्धक्षमता पर निर्भर करता था । आर्य-सभ्यता में पुरुष देवताओं की प्रधानता रही । ऋग्वेद में अदिति केवल एक सूक्त तथा दो-चार इने-गिने मन्त्रों की देवी हैं । इन्द्राणी, वरुणानी तो केवल नाम हैं । सीता हल से जुती हुई भूमि है । शेष सारे ऋग्वेद में देवियों का कहीं नाम भी नहीं है । ऋग्वेद के 'पुरुषसूक्त'[५] तथा 'हिरण्यगर्भसूत्र'[६] में पौरुषशक्ति से ही सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है, स्त्री-शक्ति से नहीं । इन सूत्रों में सृष्टि-क्रम में किसी नारीरूपिणी दैवी शक्ति का नाम भी नहीं है । ऋग्वेद के 'दाक्षायणीसूक्त'[७] में भी दिशाएँ तथा सृष्टि अपने-आप ही उत्पन्न हुई—"फिर अदिति से देवता उत्पन्न हुए ।"

---

(१) Egyptian Myth and Legend XXXV. (२) Egyptian Myth and Legend 10. (३) Egyptian Myth and Legend 10. (४) Myths of China and Japan–268. (५) १०।९० (६) १०।१२१ (७) १०।७२

अदिति तथा अन्य प्राचीन देशों की अदिति के समान देवियों ने, अपने पुत्र अथवा पिता को ही अपना पति बनाया। ऋग्वेद में दक्ष (कार्यकुशल) अदिति के पुत्र होकर भी अदिति के पति हुए तथा पिता भी। पुराणों में जनमत के आदरहेतु 'कश्यप प्रजापति' को अदिति का पति बनाया गया। इसके विपरीत 'ऐतरेय ब्राह्मण'[1] तथा अन्य ग्रंथों में आदि पुरुष प्रजापति ने अपने शरीर से ही अपनी पुत्री उत्पन्न की, फिर उसे अपनी पत्नी बनाया। यह पुत्री तथा पुत्र से विवाह करने की कथा का प्रचार स्वाभाविक था; क्योंकि यदि सृष्टि का आरंभ किसी 'पुरुष' देवता से हुआ तो फिर उनकी स्त्री भी उनके द्वारा निर्मित उनकी पुत्री हुई। इसी प्रकार यदि सृष्टि का आरंभ किसी स्त्रीशक्ति से हुआ तो उन स्त्री के पति भी उनसे उत्पन्न उनके पुत्र हुए। ऋग्वेद की अदिति के पुत्र तथा पति 'दक्ष' ने सृष्टि करने में दक्ष होने के कारण ऐसा नाम पाया। भाष्यकारों ने सूर्य को ही ऋग्वेद का दक्ष माना है। मिस्र के आकाश की देवी 'नुट' के पति 'शु' भारत के 'परमैश्वर्यशाली देवराज इन्द्र' की भाँति आकाश तथा पृथ्वी के मध्यवर्ती देवता हैं। भाष्यकारों ने सूर्य को ही इन्द्र भी माना है[2]। निरुक्तकार के अनुसार एक ही देवता अपने भिन्न-भिन्न गुणों के कारण अनेक नाम से पूजे जाते हैं[3]। ऋग्वेद में दो स्थानों पर अदिति के साथ दिति का नाम आया है। चतुर्थ मंडल के द्वितीय सूक्त के एकादश मन्त्र में अग्नि से कहा गया है,—"**दिति च रास्वादिति मुरुष्य।**" सायनाचार्य ने यहाँ दिति का अर्थ 'दानशीलता' अथवा दानशील मनुष्य बताया है। इस मन्त्र में अग्नि से दिति को समृद्धिशाली बनाने तथा अदिति की रक्षा करने को कहा गया है। यहाँ कदाचित् इससे समुचित अर्थ यह होगा कि अग्निदेव खंडनीया प्रकृति की विविध विभूतियों अथवा मनुष्य की खंडनीया समृद्धि को बढ़ाते हैं तथा अखंडनीया तथा अनिर्वचनीया अखिल विश्व की मातृशक्ति अदिति की रक्षा करते हैं। इस मंत्र में क्षणभंगुर सांसारिक भोगों को चाहनेवाले दैत्यों तथा नित्य अनश्वर देवताओं के भेद का बीज दीख पड़ता है।

पंचम मंडल, बासठवें सूक्त के आठवें मन्त्र में मित्र एवं वरुण को अदिति और दिति दोनों को हम देखते हैं। ऋक्संहिता (७।१५।१२) में "**दितिश्च दाति वार्यम्**"— दिति मनोवांछित फल देती है। ब्राह्मणों में देवताओं तथा असुरों को एक दूसरे के विपरीत माना गया है तथा दैवी एवं आसुरी प्रवृत्तियों का उद्गम एक होने पर भी उनमें परस्पर द्वेष होने के कारण उन्हें एक दूसरे का भ्रातृव्य कहा गया।[3]

(१) १३।९। (२) यजुर्वेदभाष्यम्–महर्षि दयानन्द सरस्वती। (३) निरुक्तम् ७।२।५। (४) बृहदारण्यकोपनिषद् १।३।७।

रामायण काल तक दिति तथा अदिति इन दो पृथक् आदि नारियों की कल्पना परिपक्व हो चुकी थी[१]। दिति के पुत्र महाबली तथा अदिति के पुत्र पराक्रमी एवं धर्मनिष्ठ थे।

दिति शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है; पर सम्भवतः यह अखंडनीया अदिति के विरोधवाची शब्द के रूप में ही व्यवहार में आया। दिति नाम ईरान की धार्मिक कथाओं में तो नहीं आया है; पर 'दैत्य' शब्द देवताओं के समूह अथवा 'सम्मेलन स्थान' के अर्थ में व्यवहृत हुआ है[२]। जैसा पहले बताया जा चुका है, अति प्राचीन काल में देवता, असुर, दानव, एक ही थे। दैत्य भी आरंभ में देवों से भिन्न नहीं थे। दैत्यों तथा देवताओं में बल तथा पराक्रम-सहित धर्मनिष्ठा का भेद था। संसार की अनेक प्राचीन जातियों की आदिमाता देवोचित तथा दैत्योचित दोनों गुणवाले सन्तान की माता थी। यूरोप की आदिम जातियों की देवमाता 'दानु' महाबलशाली 'दानव' नामक देवताओं की माता थी[३]। दानु का पुत्र 'दाग्दा' अथवा 'क्रौम क्रुएच' भयावह देवता था, जिसकी पूजा भक्ति से नहीं; भय के कारण होती थी[४]। बाली द्वीप में देवी दानु, देवी गंगा, गिरि पुत्री, दुर्गा तथा उमा शिव की स्त्रियाँ हैं।[५]

दिति केवल दैत्य ही नहीं, मरुतों की भी माता थी। ऋग्वेद में मरुतों को सुदानवः अर्थात् दानु के सुन्दर पुत्र भी कहा गया है। 'सुदानव' नाम अन्य देवताओं के लिए भी आया है; पर विशेषकर यह मरुतों का ही नाम है एवं देवशत्रु भी स्वयं 'दानु' है अथवा दानु की सन्तान दानव है। दिति के पुत्र दैत्य तो समुद्रमन्थन के पश्चात् संग्राम में देवताओं द्वारा नष्ट हो चुके थे। दिति से मरुद्गणों की उत्पत्ति की कथा आगे कही जायगी। पुराणों में दिति तथा अदिति के पति प्रजापति कश्यप थे। रामायण में, जिसका रचनाकाल पुराणों के पूर्व है, कश्यप प्रजापति को मारीच कश्यप कहा गया है। 'मारीच' सूर्य का नाम है। शतपथ ब्राह्मण[६] में सूर्य को 'करनेवाला' अर्थात् 'कूर्म' कहा गया है। कूर्म ही कच्छप अथवा कश्यप है। कार्य करने में कुशल अथवा दक्ष होने के कारण वही सूर्य 'दक्ष' भी है।

---

(१) रामायण १।४५।१५ (२) "Then Ahura Mazda, the creator, convened an assembly with the spiritual yazatas in the FAMOUS Hiryana Vaejah at the goodly Daitya."—Mythology of All Races—Iran—P. 307. (३) Egyptian Myth and Legend—p XXXIV. (४) "Great was the horror and scare of him"—Celtic Myth and Legend. (५) Island of Bali—Mignel Covarrubias. (६) ४।२।१।८

विष्णुपुराण में अदिति के साथ-साथ दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु तथा मुनि नाम की दक्ष-कन्याएँ 'कश्यप प्रजापति' को ब्याही गईं ।[१] दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दैत्य हुए ।[२] जैसा पहले बताया जा चुका है—'हिरण्याक्ष' ऋग्वेद में सूर्य का ही नाम है । हिरण्य का सम्बन्ध आरंभ में सूर्यादि 'दिव' तथा वृत्रादि 'आच्छादक' दोनों ही से था । श्रीमद्भागवत के अनुसार दनु से विश्वव्यापी अग्नि (अथवा सूर्यस्थित विश्वपोषक अग्नि) वैश्वानर का जन्म हुआ तथा वैश्वानर की चार सुन्दर कन्याएँ—उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा तथा कालका—हुईं । इनमें से पुलोमा तथा कालका से इनके पितामह कश्यप प्रजापति ने ही ब्रह्मा की आज्ञा से विवाह किया ।[३] इन अनेक माताओं की कल्पना 'आसुरी' वृत्तियों के वर्गीकरण का ही फल था । ये सभी माताएँ मनुष्याकृति नहीं थीं । इनका मुख या शरीर भिन्न-भिन्न पशुओं की आकृति का था । चीनी पौराणिक कथाओं की 'पश्चिम आकाश की देवी' व्याघ्ररूपिणी थी ।[४] मिस्र की देवमाता 'नुट' भारतीय 'सुरभि' की भाँति गोरूपिणी थी ।[५] पर ये सभी माताएँ वस्तुतः अखिल भुवन की उत्पादनशक्ति अर्थात् मातृशक्ति का ही प्रतिरूप थीं । बृहदारण्यक में इन भिन्न-भिन्न रूपधारिणी माताओं का उद्भव निम्नलिखित प्रकार से बताया गया है—"आदि पुरुष प्रजापति रममाण नहीं हुआ ।.....उसने दूसरे की इच्छा की ।......उसने अपने.....को दो भागों में विभक्त कर दिया । उससे पति और पत्नी हुए ।....वह उससे संयुक्त हुआ । उसीसे मनुष्य उत्पन्न हुए । .... उसने (स्त्री ने) सोचा, अपने ही से उत्पन्न करके यह क्यों मुझसे समागम करता है ।.....मैं छिप जाऊँ । अतः वह गौ हो गई ।..तो दूसरा (अर्थात् प्रजापति) वृषभ हो गया । इससे गाय-बैल उत्पन्न हुए । तब वह स्त्री घोड़ी हो गई तथा (पुरुष) घोड़ा हो गया......." इत्यादि ।[६]

सिद्धान्त ज्योतिष काल में अदिति को सूर्य के क्रान्तिवलय (Ecliptic) का ही पौराणिक नाम समझा जाता था ।[७] सभी ग्रहों का आधार होने के कारण इसे ग्रहों अर्थात् देवताओं का मातृत्व प्राप्त था । वास्तव में अदिति क्रान्तिवलय से भी परे है । 'मोक्षमुल्लर' ने अदिति को द्यावा-पृथ्वी से परे अनिर्वचनीय अस्तित्त्व माना है ।[८] इसके विपरीत मैक्डोनेल ने "**आदत्ते रसान्**"

---

(१) विष्णु पुराण १।१५।१२६-१२७ (२) विष्णु पुराण १।१५।१४१ (३) भागवत ६।६।२६-३४ (४) Myth of China and Japan—P. 236-237 (५) Egyptian Myth and Legend—XXXIV (६) बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।३४ (७) Early Astronomy and Cosmology P 55 (८) Contributions to the Science of Mythology P 557

निरुक्त के अनुसार रस या जल को सोखनेवाले आदित्य की काल्पनिक माता को अदिति माना है ।[१] इस व्युत्पत्ति के अनुसार आदित्य शब्द पहले बना, फिर इससे अदिति शब्द की उत्पत्ति हुई । मोक्षमुल्लर के अनुसार भी आरंभ में आर्यों के देवपिता द्यौस् की स्त्री 'स्वारा' आकाशदेवी थीं, जो यूरोप में 'ज़िअस' की स्त्री हेरा बनीं । भारत में अदिति ने प्राचीन देवमाता 'स्वारा' का स्थान ग्रहण किया ।[२]

(१) Religion and Philosophy of the Veda–Keith p 217

(२) Contributions... P 505

चतुर्थ अध्याय

अग्नि-चरित्र

अग्नि देवता के भौतिक अर्थ में तो कोई सन्देह नहीं हो सकता। फिर भी वेद तथा ब्राह्मणों में अग्नि की वन्दना अथवा वर्णन से सारे हिन्दू देवी-देवताओं के भौतिक अर्थ पर प्रकाश पड़ता है। अतः इसके विषय में कुछ कहना आवश्यक है।

ऋग्वेद का आरम्भ अग्नि की वन्दना से होता है। नीचे ऋग्वेदोक्त अग्नि के कुछ अंशों का हिंदी रूपान्तर दिया जाता है—अग्नि से धन होता है। अग्नि बड़े-बड़े कार्यों का करनेवाला है। अग्नि ऋत (धर्म) का गोपा (रक्षक) है।[1] अग्नि देवताओं का दूत है। अग्नि की गति तीव्र है। अग्नि दिव्य तथा पवित्र है।[2] अग्नि अपना ही पुत्र होने के कारण तनूनपात् है। अग्नि यज्ञ में मधु (मधर हवि) भक्षण करने आता है। अग्नि मनुष्यों पर शासन करने के कारण नराशंस है। अग्नि प्रिय है। अग्नि देवताओं को रथ में बिठाकर लाता है। घृत के पृष्ठ पर स्थित बर्हि नामक अग्नि में 'अमृत' (घृत) अथवा अमर देवताओं का दर्शन होता है। इला (स्तुति), सरस्वती (वाक्) तथा मही नामक तीन प्रकार की अग्निदेवियाँ, देवों की पत्नी हैं।[3] गोरस अर्थात् घृत अग्नि को प्रिय है (**गोपीथाय प्रहूयसे**)।[4] अग्नि ही अंगिरस् है, जिससे देवताओं की उत्पत्ति हुई। अग्नि शिव (सुन्दर-कल्याणकारी) है। अग्नि देवताओं का सखा है। अग्नि की माताएँ दो हैं। (आकाश तथा पृथ्वी अथवा दो काष्ठ खण्ड जिनकी रगड़ से अग्नि उत्पन्न होता है।) अग्नि के भय से रोदसी (द्यावापृथिवी) काँप जाती है। अग्नि वसु अर्थात् निवास का हेतु, अथवा लोगों को बसानेवाला है। अग्नि मननशील 'मनु' के लिए आकाश से प्रकट हुआ। अग्नि ने 'पुरूरवा' से अनेक पुण्य कार्य कराये। अग्नि मनोवांछित अभिलाषाओं का वर्षण करनेवाला वृषभ है। अग्नि के अर्चन से वीरपुरुष शत सहस्र की संख्या में

(१) ऋ० सं० १।१ (२) ऋ० सं० १।१२ (३) ऋ० सं० १।१३ (४) ऋ० सं० १।१९

में 'राय' (रै अर्थात् धन) प्राप्त करता है। अग्नि को देवताओं ने 'नहुष' नामक प्राचीन नरराज की सेना का सेनापति बनाया था। अग्नि गौओं का अनिमेष रक्षक है। अग्नि 'अवृक' अर्थात् वृक (हिंसक) का नाशकर्ता है[१]। अग्नि पृथ्वी पर विष्णु, मित्र तथा अर्यमा का दूत है। अग्नि की सहायता से देवताओं ने (जल-निरोधक) वृत्र का हनन किया तथा पृथ्वी एवं आकाश को मरणशील मनुष्यों के निवास के लिए फैलाया[२]। अग्नि के रहने से सभी देवता हर्षित होते हैं। वैश्वानर अग्नि मनुष्यों में क्षुधारूप से स्थित है। यह आकाश के ऊपर भी है तथा पृथ्वी के गर्भ में भी। यह रोदसी (द्यावापृथिवी) का शिर है। पर्वत आदि में जो धन है, मेघ में जो जल है अथवा ज्वालामुखी पर्वतों में जो उत्पादन बढ़ानेवाले पदार्थ हैं, उनका स्वामी अग्नि है। रोदसी (द्यावापृथ्वी) अपने पुत्र वैश्वानर अग्नि को उत्पन्न करके इतनी बड़ी हो गई। विद्युत् रूपी वैश्वानर अग्नि-मेघों को भेद कर उनसे जल की वृष्टि कराता है[३]। सूर्य तथा पृथिवी अपने-अपने स्थान पर अग्नि द्वारा ही स्थिर किये गये हैं[४]। विद्युत् रूपी अग्नि जल के गर्भ में, दावानल रूपी अग्नि वृक्षों के काष्ठ में तथा जठरानल रूपी अग्नि जीवधारियों के शरीर में रहता है[५]। अग्नि के प्रताप से गायों का दूध बढ़ जाता है[६]। अग्नि ही पृथ्वी पर सात धन देनेवाली नदियों को लाता है। यज्ञ का अग्नि ही वर्षा का कारण है, जिससे ये नदियाँ अपना जल प्राप्त करती हैं[७]। अग्नि ने ही देवशुनी सरमा के रूप में इन्द्र को उस स्थान का पता बताया था, जहाँ 'वल' ने गायों (अर्थात् मेघों) को छिपा रखा था[८]। अग्नि सभी पशुओं का 'गोपा' अर्थात् रक्षक है। यह गो तथा वाजस् अर्थात् अन्न का स्वामी ईशान है। अग्नि का तेज 'महिष' अर्थात् महान है[९]। अग्नि कृष्ण है; क्योंकि जहाँ से होकर यह जाता है, वहाँ इसका मार्ग कृष्ण वर्ण हो जाता है[१०]। प्रथम अग्नि पृथ्वी का है जिससे भोजन पकता है। द्वितीय अग्नि अन्तरिक्ष का है जो पृथ्वी से जल को आकर्षित करता है, फिर उसे वृष्टि के रूप में बरसाता है। तृतीय अग्नि आकाश का है जो सात माताओं अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र के सात ताराओं के बीच निवास करता है। अग्नि दानशील 'दानव' है[११]। अग्नि वृषभ (सांढ़ अथवा वांछित कामनाओं को बरसाने वाला) है। यह धर्मात्माओं के रै अर्थात् धन को बढ़ाता है[१२]। अग्नि

(१) ऋ० सं० १।३१ (२) ऋ० सं० १।३६ (३) ऋ० सं० १।५९ (४) १।६।७ (५) १।७०।४ (६) १।७०।१० (७) १।७२।६–८ (८) १।७३।८ (९) १।७९ (१०) १।१४०।४–५ (११) १।१४१।९ (१२) २।१।३

रौरव शब्द करने वाला रुद्र है, शत्रुओं को निरस्त करनेवाला असुर है[१]। अग्नि यज्ञ करनेवालों के लिए देवमाता अदिति है,[२] स्तुति से बढ़नेवाली भारती (विद्या) है, शतसंख्यक हिम अथवा हिम की भाँति पिघल जानेवाले कालकी इला (पृथिवी) है[३]। देवताओं ने अग्नि को पृथिवी की ओर फेंका[४]। भृगुओं ने अर्थात् चमकीले ताराओं ने उसे बीच में ही रोक लिया[५]। अग्नि से सात प्रकार के प्रकाश निकलते हैं[६]। अग्नि देवताओं का गोप अर्थात् रक्षक है[७]। जब अग्नि को राधस् (अर्थात् धन या अन्न) भेंट किया जाता है तब अग्नि देवताओं से उनकी प्रशंसा करता है। अग्नि रयिपतियों में अर्थात् धनवानों में, सबसे श्रेष्ठ है[८]।

अग्नि जल का पौत्र है; क्योंकि जल से उद्भिद् होते हैं, उनसे अग्नि होता है[९]। जल का पौत्र 'अपांनपात्' मेघ में उसी प्रकार वर्तमान है, जिस प्रकार गर्भ में शिशु। जल के रूप में यह मेघ से उत्पन्न होता है[१०]। अग्नि का पिता अन्तरिक्ष है। अग्नि ने ही सात नदियों को बहाया[११]। अग्नि से वाक् उत्पन्न हुई। अग्नि शिवों का सखा है[१२]। अग्नि देवताओं का सारथी है तथा उनका पुरोहित भी[१३]। वैश्वानर अग्नि का गर्जन सिंह के समान है[१४]। अग्नि यज्ञ का पिता है तथा यज्ञ करनेवालों का असुर है, अर्थात् यज्ञ करनेवालों के शत्रुओं का अथवा उनकी त्रुटियों का हिंसक है[१५]।

अग्नि ही वह रथ है जिसमें चन्द्रमा भ्रमण करते हैं[१६]। अग्नि के प्रताप से ही पाँच अध्वर्यु (वैदिककाल की पाँच जातियाँ, पंच जनाः) तथा सात विप्र (सप्तर्षि) अपने निश्चित पद पर आरूढ़ रहते हैं[१७]। अग्नि पुरुदंस—अनेक कर्मोंवाला है। इला नामक नारीरूप अग्नि से निरन्तर साधना करनेवाले के महान् कर्म सिद्ध होते हैं[१८]।

इन्द्र तथा अग्नि अथवा इन्द्र के अग्नि ने दासों द्वारा शासित नब्बे अथवा बहुसंख्यक पुरों को ध्वंस कर डाला[१९]।

अग्नि देवताओं का आवाहक है। अग्नि सोमपान (अथवा घृतपान) से मतवाला हो जाता है। अग्नि विधाता है। विद्युत् अग्नि का रथ है। ज्वालाएँ अग्नि के केश हैं। अग्नि बल का पुत्र हैं; क्योंकि बलपूर्वक अरणीमंथन से इसकी उत्पत्ति है। अग्नि पृथिवी में वर्तमान होकर भी अन्तरिक्ष पर्यन्त अपना तेज विकीर्ण करता है[२०]।

---

(१) २।१।६ (२-३) २।१।११ (४) २।२।३ (५) २।४।२ (६) २।५।२ (७) २।९।२ (८) २।९।४ (९) २।३५।१ (१०) २।३५।१ (११) २।३५।१३ (१२) ३।१ (१३) ३।२।८ (१४) ३।२।११ (१५) ३।३।४ (१६) ३ ३।५ (१७) ३।७।७ (१८) ३।७।११ (१९) ३।१२।६ (२०) ३।१४।१।

मित्र, वरुण, विश्वेदेव, मरुत् सभी अग्नि की स्तुति करते हैं। सुन्दर अर्य, अर्थात् स्वामी, प्रेरक या शक्तिशाली, होने के कारण अग्नि ही सूर्य है। अग्नि सामर्थ्यवान् होने के कारण दक्ष है[1]।

अग्नि सूर्योदय के पहले तथा पश्चात् दोनों ही काल में अग्निहोत्रादि कर्म करनेवालों का गोपा है अर्थात् उसकी रक्षा करता है। अग्नि मनोवांछित कामनाओं का बरसानेवाला होने के कारण वृष तथा ज्योतिष्मान् होने के कारण भानु है। अतएव, अग्नि वृषभानु है। वृषभानु से रै अर्थात् धन उत्पन्न होता है। कृष्ण अर्थात् रात्रि की शोभा अग्नि की ज्वालाओं से ही होती है[2]। हे अग्नि, तुम पूरब के जो अनार्य शत्रु हैं, उनका विनाश करो तथा उन्हें भस्म करो[3]।

असुर अर्थात् बेसुध काष्ठ के गर्भ से अग्नि की उत्पत्ति हुई[4]। अग्नि का पिता अन्तरिक्ष तथा इसकी माता पृथ्वी है। अग्नि के न तो हाथ है न पाँव। गौ की इच्छा रखनेवाले अंगिरसों को अग्नि ने गौयुक्त व्रज अर्थात् चरागाह दिखाये।[5]

देवताओं का आधार अग्नि देवमाता अदिति के समान है[6]।

'सुराधा'. अग्नि, अर्थात् सुन्दर रै अथवा धन से ओतप्रोत अग्नि, अपने सुन्दर रथ में बिठा कर अर्यमन्, वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण तथा अश्विनी-कुमारों को यज्ञ की हवि ग्रहण करने के हेतु लाता है[7]।

अग्नि असुर है। यज्ञ को गो, मेष, अश्व तथा नर से युक्त करके प्रजा तथा धन की वृद्धि करता है[8]। अग्नि का सहचर (अर्थात् उसका गमन मार्ग) कृष्ण है। अग्नि का गमन मार्ग कृष्ण वर्ण हो जाता है[9]। मधुमान अग्नि समुद्र के फेन की भाँति मेघस्थित जलराशि से उत्पन्न हुआ। अग्नि जल का घृत है तथा देवताओं की अमृत ग्रहण करनेवाली जिह्वा है। अग्नि के चार दिशा अथवा वेदरूपी शृंग हैं, प्रातः, मध्याह्न तथा संध्या रूपी तीन पाँव हैं, सूर्य तथा चन्द्रमा रूपी दो शिर हैं, सात वर्ण के प्रकाश रूपी इसके सात हाथ हैं तथा आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में यह तीन प्रकार से बँधा है। अग्नि कामनाओं की वृष्टि करनेवाला वृषभ है, तथा यह रौरव शब्द करनेवाला रुद्र है[10]। जब 'पणियों' ने गौ (अर्थात् जल) को तीनों प्रकार से आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी में छिपा रखा था तब अग्नि ने ही सूर्य, इन्द्र तथा वायु से उस गौ

---

(१) ३।१४।४-७ (२) ३।१५।२-३ (३) ३।१८।१ (४) ३।२९।१४ (५) ४।१ (६) ७४।२।४
(७) ४।२।५ (८) ४।२।५ (९) ४।७।९ (१०) ४।५८।१ तथा ३

(अर्थात् जल) का उद्धार कराया[१]। जब यह अग्नि इस समग्र जगत् के प्रतिबन्धक अन्धकार रूपी रज्जु अथवा पाश को छिन्न करता है तब अग्नि के उज्ज्वल गो अर्थात् किरण से जिस किसी वस्तु का स्पर्श होता है, वह पवित्र हो जाती है[२]। देवकुमार अग्नि को महिषी अरणी ने अपने गर्भ में अनेक वर्षों तक रखा[३]। राजा अग्नि वसुपति अर्थात् धन का स्वामी है। यज्ञ में उसकी प्रमुख रूप से वन्दना होती है। उसकी सहायता से युद्ध में जय प्राप्त होती है[४]। अग्नि ने आर्यों की सेना का प्रधान सेनानी बन कर दस्युओं का विनाश किया तथा आर्यों की रक्षा की[५]।

जिसकी लपटें तीक्ष्ण हैं तथा रूप महान् है, जो तृणादि भक्षण करता हुआ अश्व के समान सुशोभित होता है, वह अग्नि कुठार के समान तीक्ष्ण ज्वालाओं को वृक्षों पर गिराता हुआ अपनी उष्ण जिह्वाओं से द्रव्य को पिघलाता हुआ महान् तरुवरों को भी धराशायी करता जाता है। जब यह हमारे शस्त्रास्त्रों को तीक्ष्ण करता है, तब इससे वाणवर्षा के समान स्फुलिंग झड़ते हैं। यह विचित्र गति अग्नि रात्रि को शत्रुओं से उसी प्रकार हीन कर देता है जैसे वृक्ष को पक्षियों से। इसकी गति रघु अर्थात् तीव्र है[६]।

वैश्वानर अग्नि के तेज से जल के सार से द्युलोक के स्थान में नक्षत्र बने। उसीकी मूर्धा में सभी लोकों का वास है। उसीसे वृक्ष की शाखाओं के समान सात नदियाँ निकली हैं[७]।

यह कर्म में संलग्न करने-वाला दिवसरूपी अग्नि कृष्ण वर्णा रात्रि को अपने में धारण करता है, अतएव यह कृष्ण है तथा श्वेत अथवा अर्जुन प्रकाश से परिपूर्ण होने के कारण यह अर्जुन भी है। अन्य ज्ञातव्य विभूतियों के साथ यह कृष्णार्जुन अग्नि आकाश तथा पृथ्वी में सर्वत्र ही वर्तमान है। नित्य जन्म लेनेवाला सूर्य रूपी वैश्वानर अग्नि हमारा राजा है। अग्नि सभी रूपों में अपनी ज्योति से अन्धकार को नष्ट करनेवाला है[८]। वीरवर अग्नि जिसकी अनेक महान् कृतियों की प्रशंसा है, अपने पराक्रम तथा पुण्य से मनुष्यों की रक्षा के लिए ही पृथिवी पर उतरा है। अग्नि कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण है। अपनी शक्ति से ही उसने जगत् के आच्छादक अन्धकार अथवा जलनिरोधक वृत्र का वध किया[९]।

अग्नि ने न केवल जलनिरोधक वृत्र की हत्या की, वरन् दस्युओं के पुरों का भी नाश किया[१०]। अग्नि रणों में धनंजय अर्थात् धन को जीतकर लानेवाला है[११]।

---

(१) ४।५८।४ (२) ५।१।३ (३) ५।२।२ (४) ५।४।१ (५) ५।४।६ (६) ६।३।४–५ (७) ६।७।६ (८) ६।९।१ (९) ६।१३।५ (१०) ६।१६।१४ (११) ६।१६।१५।

वृक्ष तथा नगरों को छेदनेवाले अग्नि को नमस्कार है। अग्नि समस्त भुवन का राजा होने के कारण सम्राट् है, बलवान होने के कारण असुर है। अग्नि वीरों में अतिशय वीर है। अग्नि पृथ्वी तथा आकाश का राजा है। पुरों के नाश करनेवाले पुरंदर अग्नि ने अनेक वीरतापूर्ण कर्म किये।[१] हे अग्नि! वसुओं के साथ तुम हमारे इस यज्ञ में इन्द्र को बुला लाओ। रुद्रों के साथ तुम महान रुद्र को भी बुला लाओ। आदित्यों के साथ तुम विश्वमाता अदिति को भी बुला लाओ। मन्त्रों के साथ तुम विश्व के पूजनीय वृहस्पति को भी बुला लाओ।[२] युवक अग्नि यश की इच्छा से यज्ञ करनेवालों को अश्वरूपी राधाओं (अर्थात् धनों) से युक्त करता है तथा असंख्य पुरों की रक्षा करता है।[३]

अग्नि जो आकाश तथा पृथ्वी में सर्वत्र स्थित है, वह इनका पुत्र है तथा पिता भी है।[४]

सभी धर्मात्मा अग्नि की उपासना करते हैं। अपनी कृष्णा तथा अर्जुना अर्थात् कृष्ण वर्ण तथा श्वेतवर्ण ज्वालाओं से अग्नि समग्र विश्व की शोभा को धारण करता है।[५]

देवशिल्पी त्वष्टा अग्नि से ही जलों में उत्तम सोमरस के धारण करने का पात्र बनाता है तथा शत्रुओं को नष्ट करनेवाले परशु की धार को भी तीक्ष्ण करता है।[६]

अग्नि ने मनुष्यों के हित के लिए पर्वत सरीखे धनों को जीता तथा दस्युओं एवं अन्य उपद्रवकारी दुष्टों का नाश किया।[७] अग्नि अनेक हनुओं अर्थात् दाढ़ीवाला हनुमान है तथा इसके सहस्रों नेत्र हैं।[८] अग्नि सदा चलायमान अतिथि है तथा आत्मा को सातों लोकों के पार ले जाता है।[९] यह तो ऋग्वेदोक्त अग्नि की प्रशंसा हुई। यजुर्वेद में भी अग्नि को कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण कालिख का उत्पादक कहा गया है।[१०] यजुर्वेद के मन्त्रों में अग्नि विष्णु का शरीर है तथा अतिथि का आतिथ्य है। अग्नि अनेक सुखों का दायक उर्वशी है। अग्नि अनेक शास्त्रों का शिक्षक पुरूरवा भी है।[११] अग्नि सुख का उत्पादक होने के कारण शिव है। सभी दिशाओं को शिव अर्थात् सुखकर बनाता हुआ यह अग्नि आकाश में (सूर्य रूप से) आता है। आकाशिक जल में स्थित यह सूर्य रूप अग्नि आकाश को सर्वत्र सिंचित करता हुआ आता है।[१२]

अथर्ववेद के अनुसार अग्नि की उत्पत्ति सोने के रंगवाले जल से हुई। सोने जैसा रंगवाला स्वच्छ पवित्र करनेवाला वह जल जिसमें सूर्य तथा अग्नि उत्पन्न

(१) ७।६।१–२ (२) ६।१०।४ (३) ७।१६।१० (४) १०।१।७ (५) १०।२१।३ (६) १०।५३।६ (७) १०।६६।६ (८) १०।७६।१ तथा ५ (९) १०।१२२।१ तथा ३ (१०) वा० सं० २।१ (११) वा० सं० ५।१–२ (१२) यजुर्वेद १३।२

हुए अर्थात् जिसने सूर्य तथा अग्नि को गर्भ में रखा, वह जल हमें सुख एवं शान्ति दे। जिस जल में राजा वरुण मनुष्यों का पाप-पुण्य देखते हुए विचरण करते हैं, उसी जल ने अग्नि को गर्भ में रखा।[१] पृथ्वी गो है तथा अग्नि उसका बछड़ा है। अग्नि से आकृष्ट होकर ही पृथिवी कामनाओं को देनेवाली कामधेनु होती है।[२]

वेदमंत्रों के उपर्युक्त अनुवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में अग्नि को कृष्ण कहते थे तथा अर्जुन भी। देवताओं की सेना का सेनापति, कुमार, जल अथवा जलमयी गंगा के गर्भ से उत्पन्न बलरूपी रुद्र का पुत्र, स्वयं रौरव शब्दकारी रुद्र, विकराल दाढ़ोंवाला हनुमान, सहस्रों नेत्रोंवाला परमैश्वर्य-शाली देवता होने के कारण इन्द्र, ये सब अग्नि ही थे। आकाश में अग्नि का स्थान कृत्तिका नक्षत्र था। जहाँ उस समय का वसन्त-सम्पात था तथा जहाँ से नक्षत्रों की गणना आरंभ होती थी। अग्नि विश्वव्यापी है। अग्नि पहाड़ों को गिरा सकता है तथा वृक्षों को भी। अग्नि की लपटें परशु जैसी हैं। अग्नि महान्बलशाली है। अग्नि रघुगामी है। अग्नि धर्म का गोप अर्थात् रक्षक है। इस प्रकार भौतिक अग्नि की वेदोक्त वन्दना में कृष्ण, अर्जुन, हनुमान, कार्त्तिकेय, सहस्राक्ष इन्द्र इत्यादि पौराणिक देवताओं के चरित्र का सूत्रपात दिखाई देता है। रघु अग्नि के कुल में ही राघव राम की उत्पत्ति हुई।

जल में अग्नि है अथवा आकाश से अग्नि पृथ्वी पर उतरी, ऐसे वेदोक्त मन्त्रों का एक आधनिक अमरीकी लेखक ने बड़ा ही विचित्र अर्थ लगाया है। इनके अनुसार यह जल में स्थित अग्नि धूमकेतुओं के पुच्छ से पृथ्वी पर जलने-वाले तरल पदार्थों की वर्षा के रूप में आया था। धूमकेतु के पुच्छ वाष्पीभूत उदांगारों से बने हैं तथा यदि कोई धूमकेतु पृथ्वी के वायुमंडल के समीप आ जाय तो यह उदांगार जलते हुए तरल पदार्थों के रूप में पृथ्वी पर गिरेंगे। शुक्र ग्रह के वायुमंडल में उदांगार हैं। इस अमरीकी लेखक वेलीकौवस्की (Velikovsky) के अनुसार शुक्र ग्रह पहले एक धूमकेतु था तथा ईसवी सन् से १००० से कुछ अधिक वर्ष पूर्व वह पृथ्वी के अत्यन्त समीप आया, जिससे प्रलयकाल के दृश्य उपस्थित हुए, जिनमें आकाश से जलनेवाले तरल पदार्थों की वर्षा भी एक थी।[३] इस लेखक ने देश-विदेश के प्राचीन ग्रन्थों के अनुवाद से संकलन करके अपने सिद्धान्त की पुष्टि की है, परन्तु इसके सिद्धान्त के विप-रीत भी ऐतिहासिक सामग्री वर्तमान है। फिर इसने इन ग्रन्थों में से यत्र-तत्र

---

(१) अथर्ववेद १।६।५।१–२ (२) अथर्ववेद ४।८।४।२ (३) Worlds in Collision–Collanez

कोई एक भाग ले लिया है तथा अन्य अनेक भाग जो इनके सिद्धान्त के विपरीत हैं, उन्हें छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ शुक्र को अथर्ववेद में वृषभ कहा गया है, जिसका अंगरेजी अनुवाद बुल (Bull) अर्थात् साँड़ हुआ। यदि शुक्र आरंभ में धूमकेतु होकर पृथ्वी के समीप आया तो इसका आकार दो सींगवाले पशु के सिर जैसा रहा होगा। इससे इस लेखक ने साँड़ की पूजा का आरंभ माना। पर वेदों में तो लगभग सभी देवताओं को वृषभ अर्थात् कामनाओं को बरसानेवाला कहा गया है। इसी प्रकार जल में अग्नि का होना संभवतः मध्येशिया के मिट्टी-तेल के कुओं के स्मरण का फल हो, पर ऋग्वेद में अपस् शब्द तरल जल के अर्थ में नहीं, वरन् प्रायः अर्वाचीन विज्ञान के सर्वव्यापी तरल ईथर के अर्थ में व्यवहृत हुआ है जिससे सभी कुछ की उत्पत्ति हुई, अतः अग्नि की भी।

अंगरेजी-पुस्तक प्रागैतिहासिक भारत (Prehistoric India[१]) के लेखक स्टुआर्ट पिगट ने ऋग्वेदकालीन आर्यों को बर्बर तथा असभ्य माना है, जिन्होंने सभ्य अनार्यों के नगरों को अग्नि से जला डाला। परन्तु अग्नि का यह प्रयोग ऋग्वेदकालीन आर्यों तक ही सीमित नहीं है। संसार के सभी देशों में युद्ध में शत्रु के नगरों को जलाया गया है तथा अतिशय सभ्य आधुनिक समृद्धशाली देश एक दूसरे को (Incendiary Bomb) इन्सेन्डीअरी बम अर्थात् जलानेवाला बम तथा इससे भी भयंकर दाहक अणुबम एवं उद्जन बम से ही दूसरे देशों को जला देने की चेष्टा कर रहे हैं। युद्ध करनेवाली सभी जातियों ने शत्रुओं को परास्त करने में अग्नि की सहायता ली है। संभवतः आर्यों ने भी ऐसा किया था तथा उनके द्वारा अग्निपूजा का एक प्रधान कारण यह भी हो।

---

(१) Prehistoric India--Pelican P. 262

पञ्चम अध्याय

देवराज इन्द्र

इन्द्र विशेषरूप से वैदिक आर्यों के परमैश्वर्यशाली देवता हैं । वृत्रहन् बहराम अथवा राम के रूप में ईरान तथा 'वाहागन' एवं पराक्रमी 'हरकुलेश' के रूप में मध्यपूर्व तथा यूरप में भी इन्द्र की पूजा हुई तथा वरुण, मित्र एवं नासत्य के सात इन्द्रनाम से भी यतमित्तानी राजाओं के देवता रहे, पर भारत में ही ये देवताओं के अधिपति हुए । कदाचित् इन्द्र का वृष्टि से सम्बन्ध तथा भारत में कृषि के हेतु वृष्टि का महत्व, ये ही इन्द्र की प्रधानता के कारण हुए ।

निरुक्तकार ने अनेक प्रकार से इन्द्र की व्याख्या की है । इन्द्र इरां तृणातीति=इन्द्र अर्थात् अन्न के बीज को वृष्टि द्वारा अंकुरित करानेवाला है[1] इरां ददातीति वा, इरां दधातीति वा । इन्द्र इरा अर्थात् अन्न को देता है वा धारण करता है । यह वृष्टि द्वारा इरा का स्वामी 'ऐरावत' अर्थात् मेघरूपी हस्ती पर आरूढ़ है । ऐरावत भी इरा का ही वर्द्धन करनेवाला है । वृष्टि का यह देवता इन्द्र, विश्व को द्युतिमान् करनेवाला इन्धन सूर्य भी है । इन्धे भूतानीति वा । यही इन्द्र निरुक्त के इन्दवे द्रवतीति, इन्दवे रमतीति सूत्रों के अनुसार चन्द्रमा में दिखाई देनेवाला मनुष्य अर्थात् स्वयं चन्द्रमा भी है, जो सोमरूप[2] से जल का सार तथा उद्गम है । यह सब 'इदं', जिसने बनाया अथवा चेतनाशील किया, वह परमैश्वर्यशाली देवता भी इन्द्र है । इदं अर्थात् यह सब कुछ जो देखता है, वह भी इन्द्र है। यह सब कुछ देखने के लिए अनेक आँखों का होना स्वाभाविक है। अतः इन्द्र ही पीछे चलकर सहस्राक्ष के नाम से प्रसिद्ध हुए । फिर इदं अर्थात् इस शत्रु को विदीर्ण करनेवाला वीरवर सेनानी भी इन्द्र है ।

मोक्षमुल्लर के अनुसार इन्द्र शब्द का अर्थ आरंभ में इंदु अर्थात् वर्षा की बूंदों का बनानेवाला था । पर यही इन्द्र वज्र धारण करनेवाले, जलनिरोधक

(१) निरुक्त १०।१।८ (२) Contributions, P. 115

वा आच्छादक वृत्र का वध करके गो अर्थात् पोषक जलराशि वा प्रकाश किरणों का, अतएव मनुष्यमात्र का उद्धार करनेवाले थे। इन्हीं कर्मों के कारण इन्द्र के नाम की अन्य व्याख्याएँ होने लगीं।

ऋग्वेद के लगभग चतुर्थांश मन्त्र इन्द्र की वन्दना में ही कहे गये हैं। इन्द्र चित्रभानु है। उँगली से निचोड़े हुए सोमरस का पान करने को यह विचित्र सौन्दर्यवाला देवता आता है।[१] इन्द्र तीव्र गतिवाला तूतुजान है। इन्द्र हरिवः है अर्थात् जल को हरनेवाली सूर्य-किरणों पर अथवा घृत को हरनेवाली अग्नि की लपटों पर आरूढ़ होकर यज्ञ में आता है।[२] सुन्दर कर्मों को करनेवाला इन्द्र हमारा रक्षक है। नित्य दूध देनेवाली गाय के समान नित्य सुखदायक इन्द्र हमारे द्वारा पूज्य है।[३] शतसंख्यक क्रतु अर्थात् यज्ञ अथवा कर्म को करनेवाले इन्द्र ने सोमरस पान करके सघन वृत्र को नष्ट कर डाला अर्थात् घनीभूत जलनिरोधक मेघों को नष्ट करके उनका जल पृथ्वी पर बरसा डाला।[४]

इन्द्र के हरनेवाले हरि अश्वों अर्थात् चमकनेवाली सूर्य-किरणों या अग्नि की लपटों को देखकर शत्रु तिरोहित हो जाते हैं।[५]

इन्द्र के अनुशासन से सूर्य तथा अग्नि स्थावर एवं जंगम सृष्टि को अपने-अपने कर्मों में नियुक्त करते हैं। इन्द्र ही आकाश को ज्योतिष्मान् सुन्दर ताराओं से सुशोभित करता है।[६]

इन्द्र ही अचेतन को चेतन करते हुए तथा अरूप को रूपवान् करते हुए नित्य उषा से उत्पन्न होनेवाला सूर्य है।[७] अपने हरणशील हरि अर्थात् जल अथवा घृत को हरनेवाले रश्मिसमूह अथवा तेजरूपी अश्वों पर आरूढ़ इन्द्र सभी दिशाओं से हवि ग्रहण करने के हेतु आता है। इन्द्र का रंग सोने जैसा है। इन्द्र का आयुध वज्र है।[८] इन्द्र ने ही उपासकों के हित के लिए सूर्य को आकाश में उगाया है। सूर्य के गो (अर्थात् किरणों) से इन्द्र, पर्वत अर्थात् मेघ को परिचालित करता है।[९]

पाँच लोकों में एक इन्द्र ही मनुष्यों को वसु अर्थात् धन से परिपूर्ण करता है।[१०]

---

(१) ऋग्वेद १।३।४ (२) १।३।६ (३) १।४।१ (४) १।४।८ (५) १।५।४ मोक्षमुल्लर के अनुसार हर=चमकना (Contributions) (६) १।६।१ (७) १।६।३ (८) १।७।२ (९) १।७।३ ऋग्वेद में गो के तीन अर्थ हैं, एक गो पशु, एक दुधारु गाय की भाँति जल देनेवाली मेघ-राशि, उषा वा प्रकाश-किरण जो गौओं के साथ साथ प्रातःकाल को व्रज अर्थात् विचरण करने निकलती है (Max Müller-Contributions) P. 761 (१०) १।७।९

इन्द्र की चोट से जलनिरोधक वृत्र अर्थात् मेघ रो उठा । इन्द्र हमारा तथा हमारे अश्वों का रक्षक है ।[१] इन्द्र का बल आकाश जैसा असीम है ।[२]

इन्द्र सोम (अर्थात् एक लता विशेष के रस) को पीनेवालों में सबसे अधिक सोमपान करनेवाला है । सोमयज्ञ में सबसे अधिक सोम इन्द्र को ही अर्पित होता है । सोमपान करके इन्द्र का उदर समुद्र के समान फैल जाता है । इन्द्र के मुख में सभी प्रकार के जल विलीन हो जाते हैं ।[३] सोमपान करके इन्द्र शक्तिशाली होकर विश्व के सभी कर्म करता हुआ चलता है ।[४] इन्द्र कामनाओं को बरसानेवाला वृषभ है तथा समस्त जगत् का पति अर्थात् स्वामी है ।[५] इन्द्र वसुओं अर्थात् धनों का रक्षक वसुपति है । जो इन्द्र की वन्दना करते हैं अथवा उसे हवि अर्पण करते हैं उनकी इन्द्र घम-घूम कर रक्षा करता है अर्थात् जहाँ-कहीं उन पर विपत्ति आती है, उनकी रक्षा के लिए वहीं जा पहुँचता है ।[६]

इन्द्र गायों के हेतु व्रज अर्थात् विचरण या चरागाह भूमि को समुन्नत करता है । पर्वत अर्थात् मेघ को चलायमान करनेवाला अथवा मेघ पर चलने वाला, इन्द्र, राधस् अर्थात् अन्न, दुग्ध इत्यादि के रूप में धनराशि को उत्पन्न करता है ।[७]

आकाश तथा पृथ्वी मिलकर भी शत्रुओं को मारनेवाले इन्द्र से बड़े नहीं है । इन्द्र ही स्वर्गीय जल को हमारे लिए पृथ्वी पर भेजता है तथा गायों में दुग्ध उत्पन्न करता है ।[८] इन्द्र शत्रु को कुश के समान धराशायी करनेवाले कौशिक हैं । इन्द्र की गति मन्द है । इन्द्र नये-नये अन्नों की सृष्टि करते हैं। इन्द्र ने ही सहस्रों ऋषियों अर्थात् चमकीले ताराओं को बनाया ।[९]

जब 'वल' नामक राक्षस ने गो अर्थात् प्रकाश अथवा भोजन के उत्पादक कृषि अथवा कृषिवर्द्धक जल को अपनी गुफा में रख छोड़ा, तब इन्द्र ने अपने पर्वताकार मेघों के साथ जाकर वल से युद्ध किया तथा 'गो' को 'वल' की गुफा से छुड़ा लाया और देवताओं को 'वल' के भय से मुक्त किया ।[१०]

इन्द्र तथा वायु की गति मन के समान तीव्र है । विप्र अपनी रक्षा के हेतु उन्हें हवि अर्पण करते हैं । इन्द्र-वायु को सहस्रों आँखें हैं । वे अत्यन्त ही धीमान् हैं ।[११] इन्द्र शिप्री अर्थात् बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले हैं । हनु का अर्थ भी शिप्र होने से शिप्री इन्द्र हनुमान् है । इन्द्र वाज अर्थात् अन्न अथवा युद्ध के

(१) १।८।२ (२) १।८।५ (३) १।८।७ (४) १।९।२ (५) १।९।४ (६) १।९।९ (७) १।१०।७ (८) १।१०।८ (९) १।१०।११ (१०) १।११।५ (११) १।२३।३

पति हैं। इन्द्र शची अर्थात् शक्ति के स्वामी हैं। इन्द्र के कार्य अमर हैं।[1] राधाओं अर्थात् धनों के पति 'राधानां पते' इन्द्र को नमस्कार है।[2]

देवशिल्पी त्वष्टा ने इन्द्र का वज्र बनाया, जिससे इन्द्र ने पर्वत अथवा मेघ में रहनेवाले जलनिरोधक अहि अर्थात् हिंसक सर्प का वध किया। ऐसा होने पर पर्वत तथा मेघ दुधारु गाय की भाँति जल की धारा छोड़ने लगे।[3] यह जल स्पन्दनशीला नदियों में गिर कर पुनः समुद्र की ओर जाता है। मतवाले साँड़ की भाँति तीनों लोक में विचरण करते हुए इन्द्र ने सोमरस पान करके अपना वज्र उस प्रथम अहि पर फेंका जो सारे संसार को अन्धकार से आच्छन्न किये हुए था। यह जलनिरोधक अथवा जगत् का आच्छादक वृत्र हाथ-पांव कटे हुए पुरुष की भांति बहते हुए जल में पड़ा है। यह जलराशि उसी धराशायी वृत्र के शरीर पर से होकर बह रही है। इन्द्र का शत्रु वृत्र जल में सोया पड़ा है। इसकी निद्रा बहुत काल तक की होती है। इन्द्र दासों का स्वामी है। इन्द्र अहिगोपा है अर्थात् हिंसाकारियों से, सर्प से, अथवा जलनिरोधक वृत्र से, हमारी रक्षा करने वाला है। इन्द्र ने वृत्र का वध करके जल को अनिरुद्ध किया तथा पणियों का वध करके "गायों" को उनसे छुड़ाया।[4]

वृत्र अहि तथा इन्द्र ने परस्पर विद्युत् एवं अन्य चित्र-विचित्र आयुधों से युद्ध किया तथा गरज-गरज कर एक दूसरे के सम्मुख आये। वृत्र का वध करके इन्द्र पुनः निन्यानबे अर्थात् अनेक नदियों के पार सुदूर अन्तरिक्ष के परे चले गये। उन्होंने ऐसा वृत्र के भय से नहीं किया। बाज पक्षी जिस प्रकार आकाश में निर्भीक विचरण करता है उसी प्रकार इन्द्र भी आकाशचारी हैं।[5]

वृत्र के चिग्घाड़नेवाले सोने के रंग के, मणियों से सुशोभित, जो अनुचर आकाश में आये, उन्हें युद्ध में मारकर इन्द्र ने जला डाला।[6]

इन्द्र यज्ञ में बलि के निमित्त मेष अर्थात् भेड़े के रूप में आता है। स्तुति से इन्द्र की शक्ति बढ़ती है। इन्द्र वसुओं अर्थात् धनों का अर्णव अर्थात् आगर है। इन्द्र के हाथ प्रकाश की किरणों के समान मनुष्य के हितार्थ सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। वसु अर्थात् धनवान्, दानुमद् अर्थात् दानशील, इन्द्र, पर्वत अर्थात् मेघों को धारण करता है। अपनी शक्ति से ही वह समस्त विश्व को आच्छादन करनेवाले सर्प का नाश करता है। विश्व को अन्धकार में रखने वाले उस आच्छादक सर्प का नाश करके इन्द्र आकाश में सूर्य को उगाता है।[7]

---

(१) १।२६।२ (२) १।३०।५ (३) प्राचीन जर्मन देवता थुनार अथवा थौर भी मेघरूपी गौओं का दोहन करनेवाले गोपालक थे—Max Müller—Contributions, P. 745 (४) १ ३२।१-११ (५) १।३२।१३-१४ (६) १।३३।७ (७) १।५१।१, ४

राजर्षिकुत्स के हित के लिये इन्द्र ने शुष्म नामक राक्षस को मारा। अतिथिग्व दिवोदास के लिये इन्द्र ने शम्बर नामक राक्षस को मारा। सदा से ही इन्द्र ने राक्षसों को मारा है।[१]

जब उशना काव्य अर्थात् भृगु अथवा शुक्र तारा ने अपनी शक्ति इन्द्र के वि द्ध लगाकर अनावृष्टि से अकाल लाना चाहा तो इन्द्र ने अपनी गति वक्रगति उशना काव्य से भी वक्र करके अपनी उग्रगति से आर्यों के निवासस्थान से अनावृष्टि-कारक "शुष्ण" राक्षस का भय दूर किया तथा अनेक जल के स्रोत बहाये।[२]

महान शक्तिशाली मरुद्गण वृत्र के वध के समय अपनी अपनी वृष्टि के साथ इन्द्र की ओर से युद्ध करने लगे। जब क्रोध से अन्धे होकर इन्द्र वल की परिधि अर्थात् दुर्ग की दीवार को तोड़ने लगे तब भी म द्गण ने इन्द्र का साथ दिया था। वल के दुर्ग को तोड़कर इन्द्र ने देवताओं की गौओं (अर्थात् आर्यों की गौओं अथवा सूर्य, चन्द्रमा तथा ताराओं के प्रकाश) का उद्धार किया।[३]

इन्द्र सदा शत्रुओं से युद्ध करने वाले हैं। वह अपने सहायकों से मिलकर दस्युओं के पुरों को नष्ट कर देते हैं। उन्होंने ही नमुचि नामक मायावी राक्षस को मारा था।[४]

देवगोप अर्थात् देवताओं से रक्षित आर्यगण यज्ञ की समाप्ति होने पर इन्द्र की जो प्रार्थना करते हैं उसी से इन्द्र की शक्ति बढ़ती है तथा इन्द्र की अमरता भी बची रहती है।[५]

प्रशंसा के योग्य इन्द्र दीप्तिमान "दिव" हैं, उनके दान अपार हैं, वे निर्भय हैं, वे शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हैं, उनके रथ के अश्व अर्थात् उनकी किरणें हरि अर्थात् चमकने वाली, हरिद्वर्ण, अथवा उदक् को हरनेवाली हैं। इन्द्र का यश महान है। इन्द्र महान बलशाली "असुर" हैं।[६]

इन्द्र अपने भीषण बल से सर्वाच्छादक अन्धकार को नष्ट करते हैं।[७] समग्र संसार के माता-पिता इन्द्र विश्वव्यापी होने के कारण विष्णु हैं। सभी प्रकार के भोगों का सार इन्द्र को जाता है। पर्वतों को उठाने वाले इन्द्र ने वराह अर्थात् आच्छादक मेघ अथवा कृषि नष्ट करने वाले हिंसक "वराह" को अपने प्रहार से नष्ट किया।[८] इन्द्र ही कृष्णमयी रात्रि को उषा से अलग करते हैं। सूर्य रूपी इन्द्र नित्य ही उत्पन्न होते हैं तथा सर्वदा युवा रहते हैं। कृष्णा अर्थात् काली तथा रोहिणी अर्थात् लाल गायों को इन्द्र ही उज्ज्वल दुग्ध से युक्त करते हैं।[९]

---

(१) १।५१।६ (२) १।५१।११ (३) १।५२।५ (४) १।५३।७ (५) १।५३।११ (६) १।५४।३ (७) १।५६।४ ८) १।६१।७ (९) १।६२।८,९

पुरुकुत्स के लिये युद्ध करते हुए इन्द्र ने दस्युओं के सात पुरों को नष्ट किया तथा सुदास के लिये युद्ध करते हुए इन्द्र ने अहं नामक दस्युराज का सारा धन अपहरण कर लिया।[१] एक समय पर्वतारोही अर्थात् पर्वताकार मेघ पर आरूढ़ होकर भ्रमण करनेवाले इन्द्र ने मृग-रूपधारी मायावी राक्षस मायामृग का वध किया था।[२]

वृत्र ने व्यर्थ ही अपने विद्युत् से इन्द्र के वज्र का प्रतिकार करना चाहा।[३]

इन्द्र के क्रतु अर्थात् यज्ञ अथवा कर्म महान हैं। इन्द्र अन्न के उत्पादक हैं। इन्द्र का रूप उग्र है। इन्द्र भीम अर्थात् अतिशय बलशाली हैं। इन्द्र का यश महान है। इन्द्र देदीप्यमान हैं। इन्द्र के बाहु सर्वत्र वर्तमान हैं। इन्द्र शिप्री अर्थात् हनुमान अथवा बड़ी दाढ़ोंवाले हैं। उनके अश्व हरि हैं।[४] इन्द्र ने दधीचि ऋषि की अस्थि से वज्र बनाकर वृत्र निन्यानबे अर्थात् अनेक अनुचरों को मारा।[५] वृष्णियों अर्थात् यदुवंशियों की कामनाओं को बरसानेवाले देवता इन्द्र आकाश तथा पृथ्वी दोनों के राजा तथा हवि को ग्रहण करने वाले हैं। अपने सखा मरुद्गणों की सहायता से वह अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। सूर्य का पथ इन्द्र द्वारा ही निर्धारित है। अपने अग्नि सरीखे बल से इन्द्र समय-समय पर अपने सखा मरुद्गणों की सहायता से वृत्रों का वध करते हैं तथा पृथ्वी पर सुखों की वर्षा करते हैं।[६] वज्र चलाने वाले, दस्युओं का वध करने वाले, भीम, उग्ररूप इन्द्र, सहस्रों रूप में दर्शन देते हैं तथा मरुतों की सहायता से आर्यों की पांच जातियों की रक्षा करते हैं।[७] इन्द्र ने ही ज्राश्व की सेना के रोहित् तथा श्वेत वर्ण अश्व बनाये। अम्बरीष तथा अन्य राजर्षियों तथा देवों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर इन्द्र ने भक्तों को राघस् देकर उन्हें सुराधा अर्थात् धनवान् बनाया।[८] इन्द्र सूर्य के शासक तथा सभी प्रकार के जल के भी शासक हैं। गर्भस्थित शिशुओं की इन्द्र ही रक्षा करते हैं।[९] उषाकाल में जब उशना अर्थात् प्रातःकालीन शुक्र तारा आकाश में उगा उस समय इन्द्र ने ही सूर्य के चक्र को उषा पर फेंका।[१०]

इन्द्र ने राक्षसों को मित्र तथा अर्यमन् के साथ मिलकर मारा।[११] अन्तरिक्ष रूपी समुद्र में रहनेवाला तथा जल (के समान सोम) को पीनेवाला इन्द्र महा-मत्स्य है।[१२]

पाँचों लोक इन्द्र के हाथ की पाँच उंगलियाँ हैं।[१३] इन्द्र अन्य देवताओं के तथा विशेषतर मित्र अर्यमन् तथा मरुतों के शासक हैं।[१४]

---

(१) १।६३।७ (२) १।८०।७ (३) १।८०।१३ (४) १।८१।४ (५) १।८४।१३ (६) १।१००।१–२ (७) १।१००।१२ (८) १।१००।१६–१७ (९) १।१०४।६ (१०) १।१३०।९ (११) १।१७४।६ (१२) १।१७५।१ १।१७६।१ (१३) १।१७६।३ (१४) २।११।४

जब पृथ्वी व्यथा से काँप रही थी तथा कुपित पर्वत अथवा मेघ पृथ्वी पर विनाश की वृष्टि कर रहे थे तब अन्तरिक्ष में आकर इन्द्र ने ही उन्हें शान्त किया ।[१]

जब शम्बर दस्यु पर्वतों में छिप गया तब इन्द्र ने चालीस वर्ष तक उसका पीछा किया फिर उसे ढूँढ़ निकाल कर मार डाला ।[२]

सात प्रकार के प्रकाश को फैलानेवाले इन्द्र ने ही सात प्रसिद्ध नदियों की सृष्टि की । इन्होंने हाथ में वज्र लेकर आकाश में ऊपर उठनेवाले दस्यु को मार डाला ।[३]

मनुष्यों के हित के लिये नार्मर दस्यु को मार कर इन्द्र ने उसका वसु अर्थात् धन अपहरण कर लिया ।[४] एक ही इन्द्र सौ वा दश रूपों में दस्युओं को भयभीत करने के लिये आता है ।[५] यज्ञ करनेवालों के हित के लिये इन्द्र ने भयावह दृभीक नामक दस्यु की हत्या की । नौ तथा नब्बे बाहुओं वाले अर्थात् सर्वव्यापी इन्द्र ने उरण नामक दस्यु को मारा तथा अर्बुद नामक दस्यु का शिर नीचा करके उसकी हत्या की । इसी प्रकार इन्द्र ने स्वश्न, शुष्ण पिप्रु नमुचि तथा रुधिक्र नामक दस्युओं की हत्या करके शम्बर दस्यु के सैकड़ों पुरों को नष्ट किया ।[६]

इन्द्र गोपति हैं अर्थात् पृथ्वी रूपिणी गो के स्वामी हैं । मेघों को फाड़कर इन्द्र ने पृथ्वी पर जल को बरसाया जिससे अन्न उत्पन्न हुआ ।[७]

इन्द्र कृष्ण के अनुगामी हैं तथा पृथ्वी को प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं अर्थात् कृष्णवर्णा रात्रि के अनन्तर सूर्य रूपी इन्द्र उदित होकर पृथ्वी को प्रकाशित करते हैं अथवा कृष्ण वर्ण मेघों का पीछा करनेवाले इन्द्र उनका नाश करके उनका सारा जल पृथ्वी पर गिरा कर पृथ्वी को पुनः प्रकाशमान करते हैं अथवा कृष्णवर्ण दस्युओं का पीछा कर उनका नाश करके पृथ्वी को उनके प्रभुत्व से मुक्त करते हैं ।[८]

स्वरोचिप् अर्थात् स्वयं अपने तेज से दीप्तिमान इन्द्र अथवा परमैश्वर्यशाली सूर्य, वृष्ण अर्थात् कामनाओं का अथवा जल का बरसानेवाला है । वह जगत् का अस्यक अर्थात् प्रेरक असुर है । वह तीनों भुवनों का भूषण है । वह अनेक नामों वाला विश्वरूप विष्णु अमृत में अर्थात् अनश्वर जलराशि में निवास करता है ।[९] आकाश से भी पूर्व जन्म लेनेवाले सूर्य-रूपी इन्द्र के वस्त्र अर्थात् किरण अर्जुन अर्थात् उज्ज्वल हैं ।[१०]

---

(१) २।१२।२ (२) २।१२।११ (३) २।१२।१२ (४) २।१३।८ (५) २।१३।९ (६) २।१४।३-६ (७) ३।३०।२ (८) ३।३१।१७ (९) ३।३८।४ (१०) ३।३९।२

इन्द्र की जो स्तुति करते हैं उन्हें इन्द्र राधाओं से अर्थात् धनों से युक्त करते हैं ।[१] धनंजय अर्थात् धनराशि को जीतने वाले इन्द्र संग्राम में अजेय हैं ।[२]

इन्द्र आकाश को अपनी "हरि" अर्थात् चमकनेवाली किरणों से धारण करते हैं तथा पृथ्वी को हरित वर्ण उद्भिद राशियों से परिपूर्ण करते हैं । इन्द्र द्वारा वृष्टि से हरित अर्थात् पीत वर्ण अन्न उत्पन्न होता है जिसमें स्वयं हरि अर्थात् क्षुधा हरने वाले तथा बलदायक इन्द्र वर्तमान हैं ।[३] इन्द्र ने अपना सारा बल अपने हर्यन्त अर्थात् पीतवर्ण तथा अर्जुन अर्थात् देदीप्यमान वज्र में लगा दिया तथा अपने हरि अर्थात् हरने वाली किरणों से सोमरस का पान करके अर्थात् यज्ञ में अर्पित सोमरस को किरणों से सोखकर, हरि अर्थात् जल का अपहरण करके रखने वाले मेघों से, गो अर्थात् वृष्टि पर निर्भर कृषि, को बचा लिया ।[४]

सोमरस प्राप्त करने के हेतु इन्द्र ने अपने पिता त्वष्टा का पांव पकड़ कर उन्हें मार डाला ।[५]

राधाओं के पति अर्थात् धन-धान्य के स्वामी इन्द्र को बल से निचोड़ा हुआ सोमरस तथा मन्त्रों द्वारा स्तुति यह दोनों ही प्रिय हैं ।[६]

एक ही महान इन्द्र अपनी माया से कार्य-सिद्धि के हेतु अनेकों रूप धारण करते हैं ।[७]

इन्द्र ने मगधवासी कीकट जाति के दस्युओं की गायों को छीन कर उन्हें आर्यों को दे दिया ।[८]

अपने सात प्रकार के प्रकाश से इन्द्र तीनों लोक के अन्धकार को दूर करते हैं ।[९]

इन्द्र की सभी प्रशंसा करते हैं । इन्द्र ने मेघों को चीरकर देवशुनी सरमा के बताये हुए पथ से जाकर गौओं का उद्धार किया अर्थात् जल अथवा प्रकाश को छुड़ाया । अंगिरसों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर इन्द्र ने अन्न की सृष्टि की ।[१०] इन्द्र ने शुष्म (अनावृष्टि ?) तथा कुयव (यव के दानों में बुराई लाने वाले?) नामक हिंसक प्रभावों की हत्या की । जब सूर्य कुपित होकर संसार को जलाने लगे थे तब इन्द्र ने सूर्य के रथ के पहिये को तोड़ डाला ।[११]

इन्द्र ने ऋज्रुश्व आदि आर्य नेताओं के हित के लिये पचास हजार कृष्णों अर्थात् कृष्ण वर्ण अनार्यों को मार कर उनके पुरों को नष्ट कर दिया ।[१२]

सूर्य के चक्र को भंग करने वाले अर्थात् सूर्य के प्रकाश को मेघों से ढंकने

---

(१) ३।४१।६ (२) ३।४२।६ (३) ३।४४।३ (४) ३।४४।५ (५) ३।४८।४ [द्रष्टा-चौ Max Miiller Contributions p 560] (६) ३।५१।१० (७) ३।५३।८ (८) ३।५३।१४ (९) ४।१६।३,४ (१०) ४४।१६।८ (११) ४।१६।१२ (१२) ४।१६।१३

वाले कृष्ण अर्थात् कृष्ण वर्ण मेघों के अधिदेवता इन्द्र, अन्तरिक्ष के जल में ही निवास करते हैं तथा पृथ्वी पर जल की वृष्टि करते हैं ।[१]

इन्द्र की माता अदिति ने इन्द्र को सहस्रों वर्ष पर्यन्त अपने गर्भ में रखा । इन्द्र की माता अदिति ने शिशु अवस्था[२] में इन्द्र को त्याग दिया अथवा अन्तरिक्ष में फेंक दिया । बालक इन्द्र को कुषव नामक राक्षस निगल जाने आया पर उस अवस्था में ही इन्द्र ने उसे मार डाला तथा जलों को मुक्त कर दिया अर्थात् बालरवि ने ही आँधी-तूफान पर विजय पाकर उनके जल को बरसा कर उन्हें परास्त कर दिया । जब इन्द्र व्यंस नामक दस्यु से युद्ध कर रहे थे तब व्यंस ने इन्द्र के हनु अर्थात् चिबुक अथवा दाढ़ों पर प्रहार किया । इन्द्र ने तब अपने वज्र से उस दस्यु का शिर चूर्ण कर दिया । इन्द्र अदिति रूपी गो का वत्स है तथा मतवाले सांढ़ की भांति निर्भय होकर देवताओं के शत्रुओं का नाश करता फिरता है । इन्द्र की माता ने उसे महिष अर्थात् महान् अथवा भैंसे के समान शक्तिशाली कहा । इन्द्र के ही कहने पर इन्द्र के सखा विश्वव्यापी विष्णु ने जल-निरोधक अनावृष्टिकारी अथवा आर्यों को घेरने वाले वृत्र के नाश के लिये अपने प्रसिद्ध विक्रम दिखाये । इन्द्र उत्पन्न होकर अपने पिता त्वष्टा को उनका पांव पकड़ कर मार बैठे तथा अपनी माता अदिति को मार कर स्वयं विधवा बना डाला ।[३] (प्राचीन देव त्वष्टा अर्थात् द्यौस् को हटाकर इन्द्र स्वयं देवाधिदेव बन बैठे)

मरूतों के साथ इन्द्र हमारी रक्षा करने को अन्तरिक्ष से आते हैं ।[४] इन्द्र वृष अर्थात् जल बरसाने वाले हैं । शत्रुओं पर वह अपना चतुष्कोण वज्र फेंकते हैं । इन्द्र नरों के नेता नृतम हैं । वह शची अर्थात् कर्म के स्वामी होने के कारण शचीवान् भी हैं । उन्होंने मनुष्यों के हित के लिये अनेक देशों से होकर बहने वाली नदियाँ बनाईं ।[५]

सारा संसार अपने पर्वत, समुद्र, आकाश तथा पृथ्वी सहित इन्द्र की उत्पत्ति के समय कांपने लगता है । महान बलशाली इन्द्र, पिता आकाश तथा माता पृथ्वी दोनों को ही अपने ओज से परिपूर्ण कर देता है । इन्द्र की तूफान से दिशाएँ गूँज उठती हैं ।[६] वृत्र को मारनेवाले इन्द्र से बड़ा कोई नहीं है । सभी लोक इन्द्र के ही चतुर्दिक भ्रमण करते हैं । मनुष्यों में इन्द्र का बड़ा ही यश है । देवताओं ने इन्द्र की सहायता से ही दिन तथा रातके राक्षसों पर

(१) ४।१७।१४ (२) ४।१८।४ (३) ४।१८।८-१२ (४) ४।२१।३ (५) ४।२२।२ (६) ४।२२।४

विजय प्राप्त की । कुत्स ऋषि के लिये युद्ध करते समय इन्द्र ने सूर्य का चक्र उसके स्थान से हटा लिया था । इन्द्र ने अकेले ही सभी राक्षसों से युद्ध किया । मनुष्यों के हित के लिये इन्द्र ने सूर्य को भी आहत किया । वृत्र के वध के समय इन्द्र का क्रोध अत्यन्त ही भयावह था । अपवित्रता के निवारण हेतु इन्द्र ने आकाश की पुत्री कुमारी उषा पर भी प्रहार किया । इन्द्र ने उषा के रथ के पहिये चूर-चूर कर डाले तथा उषा भयभीत होकर अपने स्थान को भाग गई । उषा के रथ के पहियों का चूर्ण ही नदी पर कुहासे के रूप में पड़ा है। इन्द्र की माया से ही सभी नदियाँ बनी हैं ।[१]

इन्द्र के घोड़े बभ्रू अर्थात् भूरे रंग के हैं ।[२] इन्द्र सीता को ग्रहण करें अर्थात् जुते हुए खेत पर जल बरसायें । पूषा नामक देवता से प्रेरित होकर हल से बनाई हुई दरारें अथवा सीता ही प्रतिवर्ष अन्न का दान करती हैं ।[३]

इन्द्र विभीषण अर्थात् राक्षसों को भयभीत करने वाला है । वह दासों का शासक है ।[४] इन्द्र शत्रुओं के दुर्ग की राह बता देता है तथा उनके धन का अपहरण कर लेता है ।[५] इन्द्र के शूर सैनिक चारों दिशाएं, तीनों भुवनों तथा पाँचों लोकों को परिपूर्ण किये रहते हैं ।[६] इन्द्र के शूर सैनिक हनु अर्थात् शत्रुओं का हनन करने वाले तथा शिप्री अर्थात् बड़ी-बड़ी दाढ़ों वाले, वेगवान् मरुद्गण हैं ।[७]

इन्द्र ने वल के दुर्ग की दीवारों को तोड़कर गौओं का अर्थात् जल अथवा प्रकाश का उद्धार किया ।[८]

देव शिल्पी त्वष्टा ने इन्द्र के लिये महान् आयुध वज्र बनाया जिसमें सहस्रों धार तथा शतसंख्यक नोकें हैं ।[९]

इन्द्र की सहायता से कुत्स ने गो चुराने वाले पणियों की बहुत बड़ी सेना को हराया । इन्द्र ने कुत्स के हित के लिये ही अनावृष्टिकारी शुष्ण राक्षस को मार कर अन्न की रचना की । इस युद्ध में कुत्स इन्द्र के सारथी थे । कुत्स के हित के लिये ही इन्द्र ने अपने को फैलाकर जल की रचना की । इन्द्र बाज पक्षी की भांति यज्ञ में अर्पित किया हुआ सोमरस का अपना अंश लेकर आकाश में चला जाता है । सोमपान से शक्तिशाली होकर इन्द्र ने नमुचि राक्षस को मारा तथा उसका शिर चूर-चूर कर दिया जो अब समुद्र के ऊपर फेन बनकर तैरता फिरता है । इन्द्र ने सर्प के पुत्र नमि की रक्षा के लिये ही नमुचि को मारा था । इन्द्र ने सर्प के समान मायावी पिप्र नामक दस्यु के सारे दुर्गों को नष्ट

---

(१) ४।३०।१–१२ (२) ४।३२।२३, २४ (३) ४।५७।७ (४) ५।३४।६ (५) ५।३४।७ (६) ५।३५।२ (७) ५।३६।२ (८) ६।१७।६ (९) ६।१७।१०

कर दिया । इन्द्र सुदामन् अर्थात् सुन्दर दानवाला सुदामा है । राजा ऋजिश्व की पूजा से प्रसन्न होकर उसने उनका खोया हुआ वैभव पुनः प्राप्त कराया ।[१]

कामनाओं को बरसाने वाला इन्द्र आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी को परिपूर्ण करके ब्रह्म अर्थात् वैदिक धर्म के द्वेषियों को जलाता फिरता है । इन्द्र पृथ्वी तथा समुद्र (Space) दोनों को प्रकाशित करता है ।[२]

अनेक क्रतुओं अर्थात् यज्ञों वा कर्मों के करने वाले इन्द्र की गुणरूपिणी शचियाँ अर्थात् विशेषताएं सभी लोगों में अनेक दिशाओं में चरनेवाली गौओं की भांति फैली हैं । इन्द्र सुदामा अर्थात् सुन्दर दामन् अथवा रज्जु वाला है । इन्द्र के इस सुन्दर रज्जु के अनेक धागे हैं जिनमें निखिल विश्व बंधा है । इन्द्र सुदामा अर्थात् औरों को अपने सुन्दर रज्जु में बाँधनेवाला होकर भी स्वयं अदामा अर्थात् किसी से न बँधने वाला है ।[३]

जब वृषभ नामक आर्य राजा अथवा जल बरसाने वाला मेघ दस्युओं से अर्थात् आर्यों के शत्रुओं से अथवा जल-निरोधक आकाशिक शक्तियों से युद्ध कर रहा था, तब इन्द्र ने उसे अपना रथ दिया था । यह युद्ध दस दिनों तक होता रहा ।[४]

गायें भग देवता की सम्पत्ति हैं । इन्द्र गोपति अर्थात् उन गायों का रक्षक है । गायें ही सोमयज्ञ में प्रथम भक्ष अर्थात् सर्वप्रथम बलि प्रदान करने योग्य है ।[५]

प्रत्येक युग में इन्द्र अपने भक्तों की पूजा से प्रसन्न होकर पृथ्वी पर आते हैं ।[६] इन्द्र के कान उनको अर्पित की हुई मुनि-स्तुति को ध्यानपूर्वक सुनते हैं ।[७]

इन्द्र सब कुछ करने में समर्थ दक्ष हैं । भक्तों का सहायक मित्र देवता भी वही है । सोमपान करके सब को हिला देनेवाले मरूतों के साथ भयंकर इन्द्र अपने पुजारियों की सहायता के लिये आता है ।[८]

इन्द्र ने उषा के साथ उषापति सूर्य को बनाया तथा सूर्य को प्रकाश से भरा। इन्द्र ने तीनों भुवनों को सोम से भर दिया फिर स्वयं अन्तरिक्ष में अदृश्य होकर सोमपान करने अमरत्व को प्राप्त किया । इन्द्र ने आकाश तथा पृथ्वी को अपने अपने स्थान में बाँधा तथा सात रंग के प्रकाशरूपी अश्वों को सूर्य का रथ खींचने की आज्ञा दी । इन्द्र ने गौओं में दुग्ध की स्थापना की । दश इन्द्रियों से इन्द्र ही सोमपान करते हैं ।[९]

---

(१) ६।२०।४–७ (२) ६।२२।८, ९ (३) ६।२३।४
(४) ६।२६।४ (५) ६।२८।५ (६) ६।३६।५ (७) ६।३८।२ (८) ६।४४।७ (९) ६।४४।२३, २४

इन्द्र ने कुत्स के चरागाहों को दस्युओं से मुक्त किया ।[१] उषा इन्द्र की तेजराशि है । पांव न होने पर भी उषा पूरब से आती है तथा पांव वालों को अपने अपने कार्य में संलग्न करती है । इसी प्रकार बिना पांव की वाणी भी आज्ञा के रूप में पांव वालों को कार्यों में विनियुक्त करती है । तीस पग अर्थात् घटिकाओं में उषा दिवस को पार कर जाती है ।[२] (एक घटिका २४ मिनटों के समान होती है) ।

गौओं को ढूंढ़ने वाले साठ हजार वीर इन्द्र द्वारा मारे गये अर्थात् गौओं का अपहरण करने वाले साठ हजार दस्यु इन्द्र द्वारा निहत हुए ।[३]

इन्द्र ने नहुष की सेना के लिये अश्व दिये ।[४] सूर्य की किरणों से इन्द्र संसार के दुःख-क्लेश को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे अग्नि से वन नष्ट हो जाता है ।[५]

देवमाता अदिति इन्द्र की स्तुति करती है ।[६] जब से इन्द्र के सखा विष्णु अर्थात् इन्द्र के समवर्ती वा सहचर विष्णु ने तीनों लोकों को तीन पग में पार कर लिया तब से ही जल को सोखने वा हरने वाली सूर्य की हरित किरणें निखिल जगत् की गति को नियमित कर रही हैं ।[७]

सर्वदा युवा, लम्बी गरदन वाला सांढ़ अथवा शिर न दिखाई देने के कारण लम्बी गरदन वाला वृष्टिदाता इन्द्र कहाँ रहता है ? यह तो ब्रह्मा को छोड़कर और कौन जानता है अथवा कः देव ब्रह्मा ही यह जानते हैं ।[८]

इन्द्र वराह को नष्ट करके संसार को जल से परिपूर्ण करते हैं । जल से ही दुग्ध तथा मधु की उत्पत्ति है ।[९] अपाला पृथ्वी इन्द्र के समागम से ही वनस्पति से परिपूर्ण होती है ।[१०]

सूर्य के रूप में इन्द्र अपनी किरणों से पृथ्वी का जल पी जाते हैं फिर उसी को वृष्टि के रूप में पृथ्वी पर लाते हैं । इन्द्र विशाल हैं, सदा चलायमान हैं, सर्वत्र वर्तमान हैं । जल से पृथ्वी को पालने वाले इन्द्र जगत् की माता हैं । इन्द्र का आधार और कोई नहीं है । इन्द्र यज्ञ में हवि को भक्षण करने वाले हैं ।[११]

इन्द्र का परशु अर्थात् तड़ित् सूर्य की भांति चमकता है ।[१२] वृषाकपि सूर्य इन्द्र का सेवक है । वह कल्याण का बरसाने वाला वृष है तथा अपनी किरणों

---

(१) ६।४५।२४ (२) ६।५९।६ (३) ७।१८।१४ (४) ८।६।२४ (५) ८।१२।९ (६) ८।१२।१४ (७) ८।१२।२७ २८ (८) ८।६४।७ (९) ८।७७।१० (१०) ८।९७ (११) १०।२७।१३,१४ (१२) १०।४३।९

से जगत् को कम्पित अर्थात् चलायमान करने वाला कपि है । अस्त होकर वह पुनः जगत् के कल्याण के हेतु उदय होता है ।[१]

इन्द्र के अश्व अर्थात् सूर्य के किरणसमूह हिंसकों के बल को हरने वाले हैं । इन्द्र का रंग "हरि" अर्थात् पीला है । इन्द्र का वज्र भी हरित् वर्ण ही है। इन्द्र स्वयं उदक् वा क्लेश को हरने वाला है । इन्द्र से ही हरित् वर्ण यवादि अन्न होते हैं । इन्द्र महाबलशाली असुर है तथा गो अर्थात् पृथ्वी के रस अर्थात् जल को हरण करने के लिये उसने सूर्य को बनाया ।[२]

जब प्रातःकालीन सूर्य के रूप में इन्द्र उषा को नष्ट कर देता है तब यह सब तारे कहां चले जाते हैं, यह कौन जानता है ?[३]

इन्द्र गणों के गणपति हैं । इन्द्र के बिना कुछ भी नहीं होता ।[४]

ऋग्वेदान्तर्गत इन ऐन्द्र मन्त्रों में से कुछ के अनुवाद से यह स्पष्ट ही हो गया होगा कि इन्द्र अदृश्य स्वर्गलोक में रहने वाले देवता न होकर आरम्भ म पृथ्वी की भौतिक घटनाओं से घना सम्बन्ध रखनेवाले झंझावात तथा वृष्टि देवता थे। तड़ित् इनका आयुध तथा वेगमान एवं बलशाली मरूद्गण इनके सहायक तथा सहचर थे । हवि अथवा पृथ्वीरूपिणी गो के रस-रूपी जल को हरण करने वाली सूर्यशक्ति के देवता भी इन्द्र ही थे । देवताओं का राजा होने के कारण उन्हें सूर्य का परिचालक माना गया । बड़ी बड़ी दाढ़ों अर्थात् "हनु" वाले हनुमान भी मरुत्वान् इन्द्र ही थे तथा इन्द्र ने सीता अर्थात् जुते हुए खेत को वृष्टि से सींचकर ग्रहण किया । इन्द्र का प्रधान कार्य दस्युओं वा राक्षसों की हत्या करना था । इन्द्र पुरों को नष्ट करने वाले पुरन्दर भी थे । इन्द्र के साथ चरित्रहीनता की कुछ कथाएं लग गईं । उनमें सर्वप्रसिद्ध कथा इन्द्र द्वारा अहिल्या के सतीत्व का अपहरण है। परन्तु वे बर महाशय ने अहिल्या को उषा तथा इन्द्र को मेघ-खंड माना है तथा हौपकिंस महाशय ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि अहिल्या बिना जोति हुई भूमि है (हल से जिसका सम्पर्क न रहा हो) ।[५]

भारतीय खुदाई विभाग के भूतपूर्व प्रधानसंचालक श्री ह्वीलर ने इन्द्र को बर्बर आर्यों का नृशंस देवता माना है जिनमें सभ्य अनार्यों के नगरों को तथा नदियों पर बनाये गये बांधों को तोड़-फोड़ कर जल को अनिरुद्ध कर अनार्य आबादियों को प्लावित कर डाला । पाश्चात्य लेखक स्टुअर्ट पिगट ने अपनी

(१) १०।८६।२१ (यास्क के अनुसार) (२) १०।९६।१-११ (३) १।१११।७ (४) १।११२।६
(५) Religion and Philosophy of the Veda—Keith p 132

पुस्तक "प्रागैतिहासिक भारत" (Prehistoric India) में आर्यों को शराबी तथा बड़ी बड़ी तोंद वाला बताया है क्योंकि ऋग्वेद में आर्यों के प्रधान देवता इन्द्र का "उदर सोमपान के कारण बढ़ा" हुआ था। पर शत्रुओं को नष्ट करने के लिये देवता की सहायता केवल भारत के आर्य ही नहीं मांगते थे संसार की सभी युद्ध करने वाली जातियों ने ऐसा किया है। फिर ऋग्वेद में इन्द्र का सबसे महान कार्य वृत्र का वध है जो स्पष्टतः जलनिरोधक आकाशिक काल्पनिक दस्यु अथवा मेघ है जिसके नष्ट करने से उसके द्वारा अवरुद्ध जल पृथ्वी पर आ जाता है। पुराणों में इन्द्र शत्रु वृत्र त्वष्टा आदित्य का तमोगुणी पुत्र हुआ। इन्द्र का दूसरा शत्रु विश्वरूप भी त्वष्टा का ही पुत्र था। इन्द्र के अनादर करने से जब देवगुरू वृहस्पति ने देवताओं का परित्याग किया तब देवताओं ने ब्रह्मा की आज्ञा से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को गुरू बनाया पर उनके असुरों से मिले रहने के कारण इन्द्र ने उनका वध किया। इसी वध के प्रतिकारार्थ त्वष्टा ने वृत्रासुर को उत्पन्न किया। वह जले हुए पहाड़ के समान काला और बड़ डीलडौल का था। उसके शरीर में से संध्याकालीन बादलों के समान दीप्ति निकलती रहती थी।[1] ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक जितने भी वर्णन इन्द्र अथवा इन्द्र के प्रधान शत्रुओं के हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्र के पराक्रम आकाशिक घटनाओं के ही वर्णन हैं। ऋग्वेद में ऐसा वर्णन अवश्य है कि सोमरस पीकर इन्द्र "मन्द" हो जाते हैं परन्तु मन्द शब्द का अर्थ शक्तिशाली भी हो सकता है। जहाँ तक इन्द्र के विशाल उदर का प्रश्न है यह समझना अवश्य भूल होगा कि युद्ध में पराक्रमी आर्य बड़ी तोंदवाले मोटे भद्दे ोग थे। इन्द्र का उदर अन्तरिक्ष है, अतः विशाल है। शत्रुओं की हत्या तो सभी जातियों के देवता या उनके भगवान की सहायता से सदा से ही होती आई है। ऐसे वर्णनों से इन्द्र को आर्य-नेताओं का ही दैवी रूप मान लेना ठीक न होगा। पर हाँ, अनेक पौराणिक कथाओं में मनुष्य ने इन्द्र का पद प्राप्त करने की चेष्टा अवश्य की थी, जिससे यह जान पड़ता है कि इन्द्र का पराक्रम लौकिक नेताओं का भी आदर्श था।

ऋक्संहिता ४।५७।५ में इन्द्र तथा वायु अथवा वायु एवं आदित्य को क्रमशः शुनः तथा सीरः कहा गया है। सायनाचार्य के अनुसार शौनक ने शु का अर्थ आनेवाला अर्थात् अन्तरिक्ष में वेगपूर्वक आनेवाला बताया है।[2] प्राचीन मिस्र में "शु" नामक अन्तरिक्ष के महान देवता की पूजा होती थी जो आकाश को

(१) भागवत ६।६ (२) सायनभाष्य

पृथ्वी से अलग करनेवाले थे तथा जिन्होंने जगज्जननी आकाशरूपिणी "नुट" देवी को ऊपर उठा रखा था। सृष्टि के आरम्भ में मिस्री हिरण्यगर्भ "रा" ने अगाध जलराशि "नु" से सर्वप्रथम वेगवान् "शु" को ही उत्पन्न किया।[१] भारत के इन्द्र अन्तरिक्ष के "वेगवान्" शु देवता ही थे। जैसा पहले बताया जा चुका है, वीरीत्रघ्न वाहागन, बहराम अथवा राम नाम से मध्येशिया में भी ऐन्द्र शक्ति की पूजा होती थी यद्यपि वैदिक आर्यों से होनेवाले झगड़ों के कारण ईरान में "इन्द्र" को हिंसक तथा कुख्यात "देवों" का नायक मानकर उनको घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा था।

---:o:---

(१) Egyption Myth and Legend. P. 44.

छठवाँ अध्याय

अदिति की सन्तान

देवमाता अदिति की चर्चा पहले हो चुकी है । आकाश अन्तरिक्ष तथा पृथ्वीरूपिणी अदिति के पुत्र आदित्य कहलाये । पौराणिक काल तक तो आदित्यों की संख्या बारह निश्चित हो चुकी थी तथा वे बारह महीनों में सूर्य के ही भिन्न-भिन्न रूप माने गये । पर ऋग्वेद में आदित्यों की संख्या अनिश्चित-सी रही तथा उनके नाम में भी अन्तर रहा ।

निरुक्तकार ने आदित्य का अर्थ केवल अदिति का पुत्र ही नहीं बताया है । आदित्य के अन्य अर्थ भी हैं "आदत्ते रसान्" अर्थात् जो जल को किरणों द्वारा सोख ले। "आदत्ते भासं ज्योतिषाम्" अर्थात् ताराओं की ज्योति जो उदय होकर छीन लेता है । "आदीप्तो भासेति" अर्थात् जो प्रकाश से दीप्तिमान् है ।[1] इस व्युत्पत्ति से आदित्य शब्द अदिति से न बनकर स्वयं स्वतंत्र शब्द बना तथा इससे फिर अदिति शब्द की उत्पत्ति हुई ।

ऋग्वेद के एक स्थान पर आदित्यों की संख्या आठ बताई गई है ।[2] परन्तु अन्य स्थानों में छः, पांच, तीन, दो अथवा एक ही आदित्य की प्रार्थना की गई है । आठ, छः, पांच, तीन, दो अथवा एक आदित्य क्यों माने गये, इसके अनेक कारण बताये जा सकते हैं । चार दिशाओं तथा चार विदिशाओं को मिलाकर आठ होते हैं । हवन-कुण्ड के चार कोण तथा चार भुजाओं के मध्य-बिंदु भी मिलकर आठ होते हैं । छः ऋतु हैं । ठंडे देशों में जहाँ से आर्य आये, आरंभ में केवल दस महीनों तथा पांच ऋतुओं की गणना होती थी क्योंकि उन देशों में दस महीनों में ही सूर्य, चन्द्रमा, तारा इत्यादि के दर्शन हो सकते थे । वेदों में भी बहुधा हेमंत शिशिर को एक ऋतु मानकर पांच ही ऋतुओं

---

(१) निरुक्तम् २।४।१३ (२) १०।७२

की गणना हुई है। इन छः अथवा पांच ऋतुओं के छः तथा पांच आदित्य हुए। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा संध्या के तीन आदित्य हुए। मिस्र की पौराणिक कथाओं में वहाँ के आदित्य "रा" के मुख से स्वयं यह वाक्य कहलाया गया है कि "मैं ही प्रातःकाल को "खेपेरा" मध्याह्न को "रा" तथा संध्या को "टुम" होता हूँ।"[१] पुनः प्रातःकाल तथा संध्या के दो आदित्य एवं सविता, सूर्य, मित्र, वरुण अथवा इन्द्र को एक परमशक्तिशाली देवता मानकर केवल एक आदित्य की वन्दना हुई।

ऋग्वेद में मित्र तथा वरुण के नाम अधिकांश स्थानों पर साथ-साथ ही आये हैं। मित्र पूतदक्ष अर्थात् पुण्य कार्य में कुशल हैं। वरुण पाप अथवा हिंसक शत्रुओं का नाश करनेवाले हैं। दोनों ही घृताची अर्थात् घृत अथवा जल के बनानेवाले हैं।[२] वे वहीं रहते हैं जहाँ ऋत अर्थात् धर्मपालन होता है।[३] इन्द्र तथा वरुण हमारे लिये अनेकों प्रकार की राधाएं अर्थात् धनधान्य देते हैं।[४] मित्र तथा वरुण संसार की रक्षा करते हैं तथा हमारे लिये अनेक सुन्दर राधाएँ उत्पन्न करते हैं।[५]

वरुण पक्षियों की पहुँच से परे हैं, वायु से भी परे हैं तथा जल से भी परे हैं। पूतदक्ष वरुण असीम अन्तरिक्ष में रहकर पृथ्वी के सारे स्थावर जंगम जीवों पर शासन करते हैं। वरुण ने सूर्य को बनाया, फिर सूर्य का पथ बनाकर स्थावर सूर्य को चलायमान किया। वरुण की ही यह शतसंख्यक गुणकारक ओषधियाँ हैं। वरुण लोकहितार्थ सहस्रों कार्य करते हैं। वरुण आपदाओं को रोक कर रखते हैं तथा अपने भक्तों के देश में उन्हें जाने नहीं देते।[६]

जो तारे रात को चमकते हैं वे दिन को वरुण की आज्ञा से अदृश्य हो जाते हैं। वरुण की आज्ञा से चन्द्रमा रात्रि के आकाश को प्रकाशित करता है।[७]

वरुण तथा अन्य देवराज शत्रुओं के दुर्गों को नष्ट कर देते हैं।[८]

मित्र तथा वरुण का चक्षु सूर्य है।[९] ज्योतिष्मती अदिति नित्य ही प्रकाश बिखेरने वाले मित्र तथा वरुण को उत्पन्न करती है जो संसार की गति को नियमबद्ध करते हैं। दोनों के बीच अदिति के तृतीय पुत्र अर्यमा, मित्र तथा वरुण के आदेशानुसार सभी जीवों को अपने-अपने कर्त्तव्य में संलग्न करते हैं।[१०] मित्र तथा वरुण द्यौस एवं पृथ्वी के संयोग से उदय तथा अस्तकालीन सूर्य के

---

(१) Egyption Myth and Legend. P. (२) ऋ० सं० १।२।७ (३) १।२।८ (४) १।१७।७ (५) १।२३।६ (६) १।२४।६—६ (७) १।२४।१० (८) १।४१।३ (६) १।११५।१ (१०) १।१३६।३

रूप में उत्पन्न हुए ।[१] मित्र तथा वरुण असुर अर्थात् महाप्राण हैं तथा आकाश को धारण करते हैं ।[२]

मित्र तथा वरुण ने रेवत् अर्थात् अन्न की रचना की तथा रात्रि और दिन में उसकी रक्षा करते हैं ।[३]

असुर वरुण सभी लोकों का राजा है। जितने प्रकाशमान देव अर्थात् तारे हैं उनका भी वह राजा है तथा इस पृथ्वी के मरणशील जीवों का भी वह राजा है ।[४] पूजा प्रकाशमान वरुण के लिए है, जो अदिति का पुत्र है । सारा संसार वरुण की महती दया पर निर्भर करता है ।[५]

अदिति का पुत्र वरुण जलों का निवासस्थान है । वरुण के ऋत से ही नदियाँ तीव्रगति एवं अथक होकर पृथ्वी पर बहती हैं ।[६] मित्र तथा वरुण का स्वर्णमय रथ आकाश में विद्युत-सा प्रकाशमान होकर चमकता है ।[७] इसी रथ से मित्र तथा वरुण सारे संसार को देखते रहते हैं ।[८]

मित्र तथा वरुण ऋत के गोपा हैं[९] अर्थात् धर्म के रक्षक हैं ।

ज्योतिष्मान सूर्य, मित्र तथा वरुण की माया है तथा उनका अस्त्र भी है । इसीसे वह हानिकारक तथा जलनिरोधक प्रभावों को दूर करके पृथ्वी पर वृष्टि भेजते हैं ।[१०]

वरुण उपासकों को दु:ख क्लेश इत्यादि के पाश से मुक्त करते हैं ।[११]

पवित्र पाशोंवाले मित्र तथा वरुण दैवी अश्वों के समान आते हैं तथा अदिति के गर्भ, अर्थात् आकाश एवं अंतरिक्ष को, अपने ऋत से परिपूर्ण कर देते हैं । इनका जन्म मनुष्य के शत्रुओं के विनाश के लिए ही होता है ।[१२]

मित्र तथा वरुण जलनिरोधक वृत्र को उसकी समस्त सेना के साथ मारने वाले हैं ।[१३]

सहस्राक्ष अर्थात् सहस्रों ताराओं से पृथ्वी को देखनेवाले मित्र वरुण ने नदियों के प्रवाह के लिए उनके स्रोत खोदे ।[१४]

वरुण का शोभायमान चक्षु सूर्य आकाश में उदय होकर अपने उष्ण तेज से मृत्युलोक वासियों को जागृत करके उनको अपने-अपने कार्यों में संलग्न करता है । मित्र वरुण ने ही संवत्सर बनाया । उन्होंने पृथ्वी को मनुष्यों के निवास के हेतु फैला दिया ।[१५] आकाशरूपी समुद्र में सूर्य ही मित्र तथा वरुण का दीप्तिमान जहाज है जिसमें बैठकर वे संसार का अवलोकन करते हैं । मित्र वरुण

---

(१) १।१५१।३ (२) १।१५१।४ (३) १।१५१।६ (४) २।२७।१० (५) २।२८।१ (६) २।२८।४ (७) ५।६२।७ (८) ५।६२।८ (९) ५।६३।१ (१०) ५।६३।४ (११) १।२४।१५ २।२८।५ (१२) ६।६७।४ (१३) ६।६८।२ (१४) ७।३४।१० (१५) ७।६१।१—४

तथा अर्यमा आकाश[1], अंतरिक्ष एवं पृथ्वी को अपने प्रकाश से परिपूर्ण कर देते हैं। वह जल को शुद्ध कर देते हैं। वे देवताओं में असुर अर्थात् अत्यन्त बलशाली हैं। उन्होंने ही वृष्टि द्वारा पृथ्वी को उपजाऊ बनाया। उन्होंने ऋत अर्थात् धर्म का उल्लंघन करने वालों के लिए अपने पाश बनाये।[2]

यह प्रातः, मध्याह्न तथा संध्या के सूर्य ही मित्र, अर्यमा तथा वरुण के चक्षु हैं। अग्नि की लपटें उनकी जिह्वा हैं जिनसे वे हवि ग्रहण करते हैं। वे सभी लोकों को धारण करके उन्हें नियमबद्ध करते हैं। उन्होंनें संवत्सर तथा मासरूपी काल के भाग बनाये।[3]

वरुण का निवास जल में है।[4] ऋग्वेद की इन वन्दनाओं में मित्र वरुण अथवा मित्र वरुण अर्यमा सूर्य के साथ सम्बद्ध आकाश के देवता हैं। वरुण देवता ग्रीस में ओरानोस के नाम से आकाश के ही देवता रहे[5] पर भारत में उन्हें समुद्र अथवा जल का देवता माना गया। वैदिक आकाश भी समुद्र ही है। कालान्तर से आकाश वा अन्तरिक्षरूपी समुद्र के निवासी वरुण का निवास पार्थिव समुद्र अथवा जल में समझा गया। आकाश तथा पृथ्वी के संयोग से उत्पन्न मित्र वरुण प्रातः तथा संध्या के सूर्य हुए। संध्या तारा शुक्र वा भृगु ऐतरेयब्राह्मण में वरुण का पुत्र माना गया तथा वरुण के असुर होने के कारण शक्र असुरों के गुरु हुए। वरुण का पाश गुरुत्वाकर्षण की भाँति समस्त स्थावर जंगम सृष्टि बाँधनेवाला था। अथर्ववेद में तक्मन् वा शीतज्वर को ही वरुण का पाश माना गया है तथा इससे एवं हृद्रोग से मुक्ति के लिए वरुण की प्रार्थना की गई है। बैबीलोन के देवता "या" तथा प्राचीन पारसी धर्म के अहुर मजदा भी वरुण की भांति समुद्र तथा नदियों के अधिपति थे एवं उनमें भी आसुरी शक्ति तथा माया थी। ईरान, बैबीलोन आदि में "मित्र" नाम से सूर्य सौम्यरूप की पूजा हुई तथा वरुण वहाँ के महत्तम पूजनीय असुर अहुर मज़दा हो गये। अहुर मज़दा का अर्थ होता है महाप्राण बुद्धि अथवा बुद्धिशील प्राण। परन्तु जैसे वेद में वरुण का नाम मित्र के साथ सम्बद्ध है वैसे ही आवेस्ता में आहुर का नाम मित्र के साथ साथ आता है। आवेस्ता के अहुर तथा वैदिक वरुण के अनेक गुण एक जैसे हैं पर उनमें कई भेद भी हैं। यथा आवेस्ता में वे मित्र के पिता माने गये हैं। वास्तव में अहुर मज़दा अतिप्राचीन देवाधिदेव असुर द्यौस् तथा वरुण दोनों के सम्मिश्रण हैं तथा कम से कम जाराथुष्ट्रा की

---

(१) ७।६३।२, ४ (२) ७।६५।२, ३ (३) ७।६६।१०, ११ (४) ७।८८।४
(५) Max Müller-Contributions P. 416

गाथाओं में उन्हें एकमात्र परमपिता परमेश्वर के रूप में ही पूजा गया है। अर्यमा आवेस्ता में ऐर्यमन नामक ईरानी अहुर हो गये जिन्हें स्वास्थ्य का संरक्षक माना गया।[१]

मित्र अर्यमा तथा वरुण तो आदित्यों में प्रधान हैं, परन्तु ऋग्वेद में अन्य कई आदित्यों के नाम आये हैं। पूषा नाम से पृथ्वी को भी आदित्य माना गया है (ऋ० सं० १।२३।१३,१५–निघं० १।१)। सविता नाम से आदित्यों के प्रतीक नित्य जगत् को प्रकाशित करनेवाले सूर्य देवता की वन्दना भी हुई है। सविता को "ईशानं वार्याणाम्" जलों का राजा कहा गया है।[२] सविता अंधकारमय कृष्ण रात्रि को दिन में परिणत करते हैं। उनका रथ सुवर्णमय है जिससे वह सारे भुवनों को देखते हैं।[३] सविता असुर अर्थात् अत्यन्त बलशाली हैं।[४] सविता के रथ के सात घोड़े हैं अर्थात् सात रंग के प्रकाश हैं।[५] सूर्य इस कृष्ण जगत् को हरित् किरणों से भर देता है।[६]

ऋक्संहिता में एक स्थान पर मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष तथा अंश यही छः आदित्य कहे गये हैं।[७] भग की व्याख्या निरुक्तकार ने "भगो भजतेः" इस प्रकार की है अर्थात् जिसके द्वारा भोगों का सेवन किया जाय। दक्ष कार्य-कुशल को कहते हैं। अंश वह है जिसके अंशु वा किरण हों। इन छओं आदित्यों के साथ पूषा अर्थात् पृथ्वी का पुरुष देवता मिल कर ऋग्वेद के सात आदित्य ए जिन्हें अदिति ने देवताओं को दिया तथा आठवें मार्तण्ड को पृथ्वी की ओर फेंका।[८] पर ऋग्वेद में इन्द्र को भी अदिति का पुत्र कहा गया है। ऋग्वेद में धाता विश्वकर्मा का नाम है, परन्तु ब्राह्मणों में यह भी आदित्यों में से एक का नाम हो गया। भग देवता का नाम पारसी धर्मग्रन्थ आवेस्ता में भी "बघ" रूप में आया है। ईरान में भी यह पूजा के ही पात्र थे।[९] पौराणिक काल तक आदित्यों की संख्या बारह निश्चित हो गई थी। विष्णु-पुराण में धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, पर्जन्य, अंश, भग, त्वष्टा तथा विष्णु यही चैत्र से आरंभ करके बारह महीनों के बारह आदित्य माने गये हैं।[१०] भिन्न-भिन्न मास में अथवा प्रातः मध्याह्न संध्या के ही सूर्य में जो कुछ प्रभाव, गुण आदि का अन्तर होता है उससे यह स्वाभाविक था कि

---

(१) Max Müller-Contributions P. 125 & 547, Zoroastrian Theology-Dhalla P. 19 & 119. (२) ऋ० सं० १।२४।३ (३) १।३५।२ (४) १।३५।७ (५) १।५०।८ (६) १।११५।५ (७) २।२७।१। (८) ऋ० सं० १०।७२ (९) Essays on the Religion of the Parsis—273 (१०) वि० पु० २।१०

आरंभ में लोग उन्हें एक सूर्य न समझ कर भिन्न-भिन्न आदित्य मानते । फिर भी सूर्य का एकत्व स्पष्ट दिखाई पड़ता था । इसी कारण सूर्य को केवल एक रथ वा ऊपरी आवरण मान कर सूर्य के परिवर्तनशील प्रभाव को उस रथ में बैठनेवाले भिन्न-भिन्न आदित्यों का प्रभाव माना गया ।

ऋग्वेद में "आदित्य" वा आदित्यों का एक नाम "जार" भी है । "जार" रात्रि को जलाने अथवा नष्ट करनेवाला किंवा मनुष्य का पारजायिक अथवा संचालक किंवा रात्रि तथा उसकी पुत्री उषा दोनों का ही पिता, पुत्र तथा पति होकर उनका "जार" भी है ।[१] आदित्य को जल का जारक अतः सभी भूतों का जार भी कहा गया है क्योंकि सभी भूतों में जल वर्तमान है । जार का एक अर्थ "स्तुति का पात्र" भी होता है ।

आदित्यों की माता अदिति थी पर अन्य स्थानों में आदित्यों को तीन माता तथा तीन पिता का पुत्र कहा गया है । यह तीन माता अथवा तीन पिता स्पष्टतः आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी ही थे ।[२]

---

(३) निरुक्तम् ३।३।१६ (४) ऋ० सं० १।१६४।१०

सातवाँ अध्याय

रुद्र तथा मरुद्गण

ऋग्वेदकाल के रुद्र अथवा शिव आधुनिक हिंदूधर्म के शिव से भिन्न थे। आधुनिक शिव वा रुद्र का लोकप्रिय रूप शिवलिंग है परन्तु ऋग्वेद में लिंग वा शिश्न की पूजा करनेवाले 'शिश्नदेवाः' अनार्यों की निन्दा है।

ऋग्वेदस्थित रुद्र शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की गयी है—'रुद्रो रौतीति सतो रोरूयमाणो द्रवतीति वा रोदयतेर्वा।' जो रुदन करे, रुलाये, रौरव शब्द करे वा मेघों को पिघला कर उनसे जल बरसाये, वह रुद्र है।

रुद्र की वन्दना ऋग्वेद में अपेक्षाकृत कम स्थानों में है, परन्तु रुद्र के इस वर्णन से उनके वास्तविक अर्थ का यथेष्ट ज्ञान हो जाता है तथा रुद्र ने पीछे चलकर जो रूप धारण किया उसके रहस्य का भी उद्घाटन हो जाता है।

मित्र तथा वरुण के साथ रुद्र भी संसार को गतिमान वा चेतनाशील करते ह। रुद्र सेनापति हैं, यज्ञपति हैं, जलाशयों के पति हैं तथा भेषजों के पति हैं (अथवा जलाष नामक ओषधि के पति हैं)। उज्ज्वल वर्ण रुद्र सूर्य सोने के समान दीप्तिमान् हैं। देवताओं को धनवान करनेवाला वसु वही है।[1]

रुद्र के केश जटिल हैं। उनके होठ सुन्दर हैं। उनका रंग रोहित है। वे दीप्तिमान् दिव हैं। वे अतिशक्तिशाली तथा वराह के समान विशाल आकृतिवाले हैं। वे मरुतों के पिता हैं तथा पशुओं के रक्षक। रुद्र गो, अश्वों तथा सैनिकों को नष्ट करनेवाले हैं।[2]

रुद्र स्थिरधन्वा हैं। उनके बाण शीघ्रगामी हैं। वे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष के सभी शत्रुओं को बाणों से विद्ध करते हैं। वे अनभिभूत एषाव्यूह को बाणों से विद्ध करते हैं। विद्युन्मय रुद्र आकाश से पृथ्वी पर जल बरसा कर ओषधियों की सृष्टि करते हैं।[3]

---

(१) ऋ०सं० १।४३।३-५ (२) ऋ०सं० १।११४।१, ५, ६, ६, १० (३) ऋ० सं० ७।४६

रुद्र आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वीरूपिणी तीन माताओं के पुत्र त्र्यम्बक हैं ।[१]

यजुर्वेद (वाजसनेयी संहिता) के सोलहवें अध्याय में रुद्र को मन्यु अर्थात् क्रोधयुक्त, इषव अर्थात् शत्रुवधकारी, शिवा अर्थात् कल्याणकारिणी एवं तनू अर्थात् विस्तृता प्रकृति को अघोर अर्थात् उपद्रवहीन करनेवाला कहकर पूजा गया है । रुद्र को गिरित्र अर्थात् पर्वतों का रक्षक वा उनका उल्लंघन करानेवाला गिरीश भी कहा गया है ।[२] उज्ज्वल तथा धूम्रवर्ण रुद्र दोनों ही शत्रुओं अर्थात् जल-निरोधक हिंसक शक्ति का निवारण करनेवाले हैं । रुद्र अहि अर्थात् हिंसकों के अधराची अर्थात् उनको नीचा दिखानेवाले हैं ।

रुद्र नीलग्रीव हैं । उनको सहस्रों आँखें हैं। रुद्र वामन हैं अर्थात् वाम अथवा प्रशस्त विज्ञान के स्वामी हैं । रुद्र रोगों के भेषजी अर्थात् वैद्य हैं । उनका धनुष सहस्रों योजन विस्तृत है ।

भारतीय चान्द्र नक्षत्रों में एक रुद्र अथवा आर्द्रा नक्षत्र भी है । सूर्य आषाढ़ महीने में इस नक्षत्र में आता है तब से ही वर्षा का आरंभ होता है। उस समय रात्रि के आकाश में दक्षिण ओर धनुराशि अथवा पूर्वाषाढ़ा एवं उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों का उदय होता है । किसी ताराविशेष से वर्षा का सम्बन्ध भारत ही नहीं बैबीलोन तथा मिस्र में भी माना गया था। इश्तर तथा सोथोस के नाम से लुब्धक नक्षत्र इन देशों में वर्षा का लानेवाला माना गया । रुद्र का 'धनुष' धनुराशि भी वर्षा के आरंभ में आकाश में दिखाई देता है। भारत में पीछे चल-कर ११ रुद्र माने गये। रोहिणी, आर्द्रा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, हस्त तथा चित्रा ये ग्यारह नक्षत्र भी हैं जिनमें सूर्य के रहने से वर्षा होती है। 'रुद्र' के कुछ वर्णन तो सूर्य के समान हैं पर शुक्र तथा बभ्रु एवं भिन्न-भिन्न दिशाओं के रुद्र इन वर्णनों से ऐसा जान पड़ता है कि कदाचित् रुद्र कुछ विशेष ताराओं को ही कहते थे। रुद्र का धनुष आकाश वा तारामंडल-विशेष था तथा उनके बाण वर्षा-बिंदु थे ।

रुद्र का नीलग्रीव होना ऋग्वेद में कहीं भी नहीं लिखा है पर यजुर्वेद में रुद्र की वन्दना में ऐसा वर्णन है। मिस्र के राजा 'फारो' तथा उनके अधिकांश देवता 'नीलम' मणि की माला पहनते थे।[३] रुद्र वा रुद्रों का स्थान आकाश भी नीला था। सम्भवतः तत्कालीन राजकीय आभूषण अथवा आकाश के रंग से ही रुद्र के नीलग्रीव होने की कथा चल निकली ।

---

(१) ऋ०सं० ७।४६।१२ (२) वा० सं० ३।६१ (३) Egyption Myth and Legend—P. 55

मिस्र के देवता 'असरआ' अथवा ओसायरिस की भांति रुद्र भी 'त्रयंबक' अर्थात् आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वीरूपिणी तीन माताओंवाले हैं ।[1]

रुद्र अथवा शिव वृष्टिकारक अथवा वृषभ मेघों पर आरूढ़ होने के कारण वृषभवाहन हैं । कदाचित् अनार्यों के प्रधान देवता भी वृषभवाहन ही थे । रुद्र द्वारा दक्ष यज्ञ के ध्वंस आदि की कथा आंधी-तूफान द्वारा सूर्य के छिप जाने तथा सूर्य द्वारा रक्षित सृष्टि के नाश का वर्णन हो सकता है ।

वनस्पति तथा पशुओं को जल से तृप्त करनेवाले उनके राजा रुद्र को वनस्पति तथा पशुओं से परिपूर्ण पर्वतों का भी स्वामी माना गया । इस रूप में वह पर्वतों से निकलनेवाली नदियों के तथा विशेषत: गंगा के धारण करनेवाले हुए ।

महाकाव्य तथा पुराणों में रुद्र की प्रथम पत्नी दक्षपुत्री सती थीं । मिस्र के प्राचीन देवता 'रव्नुमु' जलप्रपात के देवता थे तथा उनकी स्त्री 'सती' नाम की 'आकाशदेवी' थी । 'रव्नुमु' पर्वत अथवा पत्थर के ढोकों के देवता थे । 'सती' प्राचीन जातियों की विश्वरूपिणी मातृशक्तियों में से एक थीं । दक्ष यज्ञ के ध्वंस के पश्चात् रुद्र सती के मृत शरीर को लेकर आकाश में विचरे थे तथा यत्र-तत्र सती के शरीर के खंड गिर पड़े थे । उल्का के रूप में 'आकाशखंड' अब भी गिरते दीख पड़ते हैं ।

शिव के गले में सर्पों की माला थी। गीता में भगवान के विराट शरीर में अर्जुन ने ईश अर्थात् शिव अथवा भूतेश नामक तारामंडल को तथा आकाश के तारा शृंखलारूपी दिव्य सर्पो को भी देखा था । अथर्ववेद में तथा चीनी धार्मिक कथाओं में पृथ्वी दिव्य सर्पों से घिरी हुई कही गयी है ।

रुद्र के दो नेत्र सूर्य तथा चन्द्रमा हैं तथा तीसरा नेत्र अग्नि है जो संसार को भस्म कर देता है । अग्नि को अनेक मन्त्रों में देवता का तीसरा नेत्र कहा गया है । ऐतरेयब्राह्मण में मृगव्याध-मंडल वा उस मंडल में स्थित अत्युज्ज्वल लुब्धक तारा को पशुपति रुद्र बताया गया है जिसकी रचना अपनी पुत्री रोहिणी को बुरे विचार से पीछा करनेवाले कालपुरुषमंडल-रूपी प्रजापति को दण्ड देने के हेतु हुई थी । प्रजापति वा कालपुरुष मंडल के हृदय में तीन तारे हैं जो त्रिकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं । रुद्र द्वारा फेंके गये त्रिशूल के ये तीन छेद हैं ।[2] पशुओं का अधिपति होने के कारण मृगव्याध पशुपति हुआ तथा व्याध वा किरात के रूप में कालपुरुष-मंडलान्तर्गत मृगशिर वा मृग नक्षत्र के लिए महाभारत में

(१) ऐ० ब्रा० १।६।१० यजुर्वेद ३।५८ (२) ऐ० ब्रा० ६।१३

इस देवता से अर्जुन का युद्ध हुआ। कदाचित वैदिक काल में कालपुरुष-मंडलान्तर्गत पाश्चात्य अलफा ओरायनिस (Orionis) तारा रुद्र नाम से नहीं विख्यात था तथा यह नाम लुब्धक तारा वा मृगव्याध-मंडल के लिए व्यवहार में था। मध्यपूर्व का वृष्टिकारक तारा भी यही था।

ऋग्वेद में रुद्र को मरुद्वृद्ध अर्थात् मरुतों को बढ़ानेवाला कहा गया है तथा मरुतों को रुद्र का पुत्र कहा गया है। मरुद्गण वेगवान वायु थे इसमें सन्देह नहीं, पर इनका जो वर्णन ऋग्वेद में है उससे महाकाव्य तथा पुराणों की अनेक कथाओं का अर्थ स्पष्ट होता है। निरुक्तकार ने मरुत की व्याख्या इस प्रकार की है—'मरुतो मितराविणो मितरोचिनो वा महद्द्रवन्तीति वा।' जो महान रव अर्थात् शब्द करे, जो रुचिमान वा शोभावान हो अथवा जो महान वृष्टि का कारण हो, वह मरुत है।[1] विद्युत के साथ मरुत् अपने अकालनाशक रथ मेघ में आरूढ़ होकर आते हैं।[2] मरुतों ने इन्द्र को वृत्र के वध में सहायता दी।[3] पृथ्वी मरुतों के भय से कांपती है।[4] मरुतों की माता पृश्नि वा अन्तरिक्ष है। वे देवताओं की वन्दना करनेवाले हैं अर्थात् मरुतों का शब्द उनके द्वारा की गयी देव-वन्दना है अथवा देवताओं की वन्दना से ही मरुद्गण बलशाली हुए हैं।[5] मरुद्गण निर्ऋति अर्थात् पाप, क्लेश वा अनावृष्टि-रूपी विपत्ति का हनन करनेवाले हैं। वे रुद्र के समान धनुर्धर हैं।[6] मरुद्गण पर्वतों को हिलाते हैं तथा वृक्षों को उखाड़ फेंकते हैं।[7] द्र के सात महान कर्मवाले पुत्र मरुद्गण जो द्यावा पृथ्वी से उत्पन्न हुए हैं, अपनी वीरता से सुशोभित हो रहे हैं।[8] सात रघुष्यद् तथा रघुपत्वान् अर्थात् तीव्र गति एवं तीव्रकर्मा मरुद्गण अपने बाहुओं से सारी सृष्टि को अन्धकारमय करके विकम्पित कर रहे हैं।[9] मरुत् विष्णु अर्थात् विश्वव्यापी हैं तथा वृष्टि का सर्जन करने के लिए द्रुतगति से स्थावर जंगम सृष्टि को विकम्पित करते हुए आते हैं।[10] मरुद्गण यमुना अर्थात् तीव्र गतिवाली जल-धारा से राधा अर्थात् धन की सृष्टि करते हैं।[11] मरुत् विष्णु के सहचर हैं।[12]

ऋग्वेद में मरुतों की संख्या सात है। सात संख्या को चुनने का कारण स्पष्ट नहीं है पर इस संख्या का प्राचीन देशों में व्यवहार कई स्थानों पर प्रचलित था। कदाचित सप्तर्षि वा सूर्य, चन्द्रमा तथा पांच ताराग्रह मिलाकर

---

(१) निरुक्तम् ११।१।१३ (२) ऋ० सं० १।८८।१ (३) १।२३।६ (४) १।३७।८ (५) ऋ०सं०१।३८।४ (६) १।३८।६-७ (७) १।३९।४ (८) १।८५।१ (९) १।८५।६ (१०) १।८५।७ (११) ५।५२।१७ (१२) ५।८७।१

सात ग्रहों के कारण ही इस संख्या का ऐसा महत्व हुआ। ईरान में 'आमेश स्पेन्टास' के नाम से तथा भारत में सात निष्ठाओं के नाम से इन सप्तर्षि वा ग्रहों के गुणों की प्रसिद्धि हुई। वास्तव में मरुतों की संख्या सात से अधिक थी। इस कारण रामायण-काल तक मरुतों की संख्या सात से बढ़कर उनचास हो गयी थी। विध्वंसकारी होने के कारण मरुतों को रामायण में दिति का पुत्र बनाया गया। बालकाण्ड रामायण के ४६वें सर्ग में उत्तर बिहार की विशाला नगरी अथवा अर्वाचीन वैशाली के समीप कौशिकी नदी के तट पर कुशप्लव नामक स्थान पर मरुतों की उत्पत्ति बतायी गयी है। देवासुरसंग्राम के पश्चात् सुरों द्वारा अपने पुत्रों के नष्ट होने पर दुःखित हुई दिति ने अपने पति मारीच कश्यप से इन्द्र को मारनेवाला पुत्र मांगा। मारीच कश्यप ने उसे ऐसा पुत्र तो दिया पर अपवित्र दशा में हो जाने के कारण दिति के गर्भ में प्रवेश करके इन्द्र ने उस गर्भ के सात टुकड़े कर दिये। जब वे टुकड़े रोने लगे तब उन्हें 'मा रुद' मत रो, ऐसा कहते हुए इन्द्र ने प्रत्येक के सात-सात टुकड़े कर दिये। यही उनचास मरुद्गण हुए।

अँगरेजी-पुस्तक 'वर्ल्डस इन कौलीजन'[१] में धूमकेतुओं को मरुद्गण सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है पर वेदमन्त्रों तथा उनके पश्चात् के ग्रन्थों के अध्ययन से ऐसा नहीं जान पड़ता। वैदिक काल में मरुद्गण के पुत्र थे पर पौराणिक काल में देवसेनानी स्कंद वा कार्तिकेय तथा गणेश उनके पुत्र हुए, जैसा अग्निचरित्र में बताया जा चुका है। कार्तिकेय वा स्कंद अग्नि के ही नाम हैं। ऋग्वेदोक्त अग्निपुरुष देव होकर भी इला, सरस्वती आदि के नाम से मातृदेवी के गुणों का प्रतीक है, अतः रुद्र की भांति अर्द्धनारीश्वर है। गणपति नाम ऋग्वेद में एक स्थान पर ब्रह्मणस्पति (अग्नि) के लिए[२] तथा एक स्थान पर इन्द्र के लिए[३] आया है। अग्नि तथा इन्द्र दोनों ही में रुद्र के अनेक गुण हैं। इन्द्र का भी उदर (सोमपान के कारण) गणपति गणेश के उदर की भांति विस्तृत है। कदाचित किसी प्राचीन आदिम देवता के कुछ गुणों का रुद्र के गुणों से सम्मिश्रण करके ही गणपति गणेश की कल्पना परिपक्व हुई।

यजुर्वेदोक्त रौद्र मन्त्रों में से कुछ तो निश्चय आर्य सेनापतियों अथवा सैनिकों की वन्दना में कहे गये हैं, यथा—'प्रमुंच धन्वनस्त्वमुभयोरात्र्योर्ज्याम्। याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप'॥ (वा. स० १६।६)। हे भगवन रुद्र अपने

(१) Worlds in Collision–Collanez-by Velikovsky (२) ऋ० सं० २।२३।१
(३) ऋ० सं० १०।११२।६

धनुष की प्रत्यंचा को खींच कर छोड़ो तथा आगे-पीछे दोनों ओर अपने हाथ के बाणों को फेको । 'विज्यन्धनु: कपर्द्दिनो विशल्यो बाणवां उत । अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषंगधि: ।।' (वा. सं. १६।१०) । इस शिरत्राणधारी[१] योद्धा का धनुष प्रत्यंचाहीन न हो जाय, इसके बाण अपनी नोकें न खो बैठे । इसका तरकस बाणों से हीन न हो जाय ।

---

(१) Helmet

आठवाँ अध्याय

देवी दुर्गा

यजुर्वेद में रुद्र की अम्बिका नाम की एक बहन थी। अम्ब 'शब्द' वेदों में जलराशि के लिए व्यवहृत हुआ है। केनोपनिषद् में उमा हैमवती अर्थात् हिम वा हिमालय से निकली जलराशि का नाम आया है। तैत्तिरीय अरण्यक में अम्बिका रुद्र की पत्नी हैं। उनके दुर्गा तथा पार्वती आदि नाम भी तैत्तिरीय अरण्यक में व्यवहार में आ गये हैं। महाकाव्यों में गंगा भी शिव की पत्नी थीं। दुर्गा के रूप में अजेय तथा काली के रूप में अतिशयकराला उमा जगज्जननी कहलायी। उन्होंने महिषासुरादि राक्षसों का वध किया।

अदिति नाम से आकाश तथा अन्तरिक्षरूपिणी 'माता' की वन्दना ऋग्वेद में अवश्य है पर अदिति भी सभी देवताओं की माता नहीं हैं तथा अदिति को निखिल विश्व की जननी मान कर देवताओं में प्रधान स्थान नहीं मिला। अरमति नाम से भक्ति अथवा उर्वरा पृथ्वी की देवी की वन्दना ऋग्वेद में है।[1] कुमारी अरमति घृत का उपहार लेकर प्रातः-संध्या अग्नि के पास आती है। अरमति आकाशिक नारी है।[2] पर जहाँ ऋग्वेद में इने-गिने स्थानों पर ही अरमति की वन्दना होकर रह गयी वहाँ आवेस्ता में अर्मैती नाम से कृषि की देवी को अत्यधिक प्रधानता मिली। उमा, पार्वती, दुर्गा व काली कदाचित आर्यधर्म में कहीं बाहर से ही आयीं। प्राचीन धार्मिक कथाओं के विशेषज्ञ डोनाल्ड-ए मैकेंजी का कहना है कि 'मातृपूजक' जातियाँ वे हुई जो स्थिर रूप से कहीं निवास करके खेती-बारी जैसा काम करने लगीं। ऐसे समाज में स्त्रियों का आदर आवश्यक था। इसके विपरीत खानाबदोश जातियों को अपने योद्धाओं की वीरता पर निर्भर करना था अतः वे पुरुष-शक्तियों की

---

(१) ऋ० सं० ७।१।६, ७।३४।२१, १०।६२।४-५ (२) ऋ० सं० ५।४३।६

उपासक बनीं। भारत में भी आर्य जब स्थिर होकर खेती-बारी करने लगे तभी उन्होंने मातृपूजा को प्रधानता दी।[१] हौग के अनुसार ईरान का पारसी धर्म आर्यों के वैदिक धर्म से तब अलग हुआ जब ईरान में पशुपालन छोड़कर कृषि पर जोर दिया जाने लगा।[२]

उमा हैमवती हिमालय की पुत्री थी। हिम का अर्थ पिघलनेवाला काल भी है। अतः हैमवती उमा, काल अथवा समय रूप से सृष्टि के क्षय एवं उत्पत्ति का कारण अथवा कालरूपी रुद्र की पत्नी होकर पूजित हुई। काल की पुत्री होकर भी पत्नी होना असंगत नहीं है क्योंकि नारी-शक्ति पुत्री, पत्नी तथा माता सभी है। इसी विचारधारा ने तांत्रिक धर्म में कुमारी कन्या की पूजा का रूप लिया। इस सम्बन्ध में एक मार्के की बात यह है कि भूतेश तारामंडल (स्वाती नक्षत्र) के समीप ही कन्याराशि के तारे हैं तथा अनेक आदिम जातियाँ कन्या-मंडल को भूतेश-मंडल की स्त्री मानती हैं।

पार्वती उमा की पुत्री है। पर्वत की पुत्री नदी हो सकती है परन्तु वेदों में 'पर्वत' शब्द मेघ के अर्थ में भी व्यवहृत हुआ है। यजुर्वेद प्रथम अध्याय के उन्नीसवें मन्त्र में वेदवाक्य को 'पर्वती' अर्थात् ज्ञानवती तथा पृथ्वी को पार्वतेयी कहा गया है। मेघ की पुत्री वाक् अर्थात् तड़ित् से उत्पन्न शब्द ने अपने को स्त्री रूप मान कर ऋग्वेद के दशम मंडल के १२५वें सूक्त में स्वयं अपना वर्णन किया है। वह सभी देवताओं की सहचरी है; मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि तथा अश्विनीकुमारों को वह धारण करती है। रुद्र के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर उन्हें ब्रह्मद्वेषियों की हत्या में सहायता प्रदान करती है। मेघरूपी पर्वत की पुत्री वाक् रुद्र की सहायिका संगिनी है। मेघ से ही जल अथवा जलराशि गंगा की उत्पत्ति है। अतः वाक् ही गंगा की बहन उमा है।

वाक्देवी ऋग्वेद में गरणशीला 'गौरी' के नाम से भी वर्णित है। इस रूप में वह जल तथा जल से उत्पन्न सभी जीवों की स्रष्टा मानी गयी है (ऋ०सं० १।१६४।४१,४२)।

उमा नाम बैबीलोन की मातृदेवी 'अमा' से मिलता-जुलता है जो मनुष्य तथा अन्य समस्त स्थावर जंगम सृष्टि की माता थी। 'अमा' बैबीलोन में 'इश्तर' तारा, भारतीय लुब्धक तथा पाश्चात्य सिरिअस नक्षत्र को ही कहते थे। इस तारा का ही दूसरा नाम 'निनसुन' अर्थात् नाश करनेवाली देवी था।

---

(१) Egyption Myth and Legend × × × iii (२) Essays on the Religion of Parsis

मिस्र में सोखित के नाम से इसी ताराशूपिणी देवी ने सूर्य देवता 'रा' के शत्रुओं को मारा था।[१] यह हत्या गर्मी की धूप, वृष्टि, नदियों में बाढ़ तथा संक्रामक रोगों द्वारा ही होती थी। सूर्य जब आर्द्रा वा लुब्धक नक्षत्रों के पास रहता है तब सन्ध्या आकाश में स्वाती नक्षत्र अथवा भूतेश-मंडल लगभग अपने सर्वोच्च स्थान पर होता है तथा उसी के दक्षिण कन्याराशि अथवा चित्रा नक्षत्र के तारे दिखाई देते हैं। कन्याराशि, चित्रा नक्षत्र, तड़ित् वा जलप्रवाह-रूपिणी उमा वर्षा के आरंभ में वनस्पति की वृद्धि के कारण सृष्टि की माता मानी गयी।

जगज्जननी केवल सृजन ही नहीं संहार भी करती हैं। मिस्र की सोखित वा सेखित का शिर सिंहिनी का था तथा उनके हाथ में खंग रहता था। सेखित का दूसरा नाम 'सूर्य की आँख' भी था। मिस्र की ही एक और 'मातृदेवी' 'तेफ्नुतने' ने सिंहिनी का रूप धारण किया था। बेबीलोन में आदिदेव अप्सु तथा उनकी स्त्री तिआमत दोनों ही उच्छृंखलताप्रिय थे तथा उनके ही पौत्र मेरोदच अर्थात् सूर्य को संसार की रक्षा के लिए उनसे युद्ध करना पड़ा था।[२]

हिन्दू 'मातृदेवी' का एक नाम काली भी है। चीनी कन्फ्यूसिअस-धर्म में आकाश को 'खिअन' तथा पृथ्वी को 'ख्वान्' कहा गया है। कन्फ्यूसिअस की धर्मपुस्तक में इन शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है—'खिअन आकाश है, वृत्ताकार है, रास्ता है, पिता है, मणि है, धातु है, शीत है, हिम है, उत्तम अश्व है........वृक्षों का फल है। ख्वान् पृथ्वी है, माता है, वस्त्र है, हंडिका है, धन है......गौ है.....कृष्ण वर्ण है....पृथ्वी पर की कृष्ण वर्ण उपजाऊ मिट्टी है।.....'[३] पृथ्वीमाता ही काली है। ऋग्वेद के गौरवर्ण द्यौष्पितर तथा कृष्णा पृथ्वी मिलकर ही अर्धनारीश्वर द्यावापृथ्वी हैं जिनसे निखिल सष्टि की उत्पत्ति है।

'दुर्गासप्तशती' में 'देवी' के अनेक पराक्रमों के वर्णन हैं। दस्युओं के साथ देवीके जो युद्ध हुए वे बहुत कुछ इन्द्र तथा वृत्र के ऋग्वेदोक्त युद्ध से मिलते-जुलते हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों के आधार पर इन सभी युद्धों की तथा 'देवी' से सम्बद्ध अन्य घटनाओं की आकाशिक व्याख्या सम्भव है।

दस्युओं से 'देवी' के युद्ध का सर्वप्राचीन वर्णन सौर-पुराण में है। इस पुराण में दी हुई कथा के अनुसार शिव ने ही अपनी मातृशक्ति से 'शिवा' की सृष्टि की। इन्द्र की प्रार्थना सुनकर शिवा ने रक्ताक्ष तथा धूम्राक्ष नामक

(१) Myths of Babylonia. P. 57-100 (२) Myths of Babylonia. P. 139 onwards (३) Myths of China and Japan. P. 265-66

राक्षसों को ससैन्य नष्ट कर दिया । इस युद्ध में शिवा ने अपने तीन शिर अर्थात् आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी एवं बीस हाथ अर्थात् दश दिशाओं में से प्रत्येक में दो-दो हाथ बनाये थे । रक्ताक्ष तथा धूम्राक्ष एवं उनके अनुचर वैदिक वृत्र तथा वृत्र की सेना जैसे ही थे ।

जब दक्षयज्ञ के ध्वंस के लिए रुद्र ने वीरभद्र नामक विकराल पुरुष को उत्पन्न किया तब उमा भी भद्रकाली का रूप धारण करके उस यज्ञ के विध्वंस में संलग्न हो गयीं ।

दुर्गासप्तशती में दिये गये वर्णन के अनुसार देवी की उत्पत्ति सर्वप्रथम तब हुई जब कल्प के अन्त में योगनिद्रा में सोये हुए भगवान विष्णु के कानों के मैल से उत्पन्न मधु तथा कैटभ नामक दो राक्षसों ने ब्रह्मा अर्थात् प्रजापति अथवा संवत्सर को नष्ट कर देना चाहा । ब्रह्मा ने उस समय देवी का जिन शब्दों में आवाहन किया वह ऋग्वेदोक्त 'वाक्' अर्थात् तड़ित् अथवा विद्युत के स्वकथित वर्णन से बहुत-कुछ मिलते हैं । दुर्गासप्तशती में देवी का आवाहन करते हुए ब्रह्मा कहते हैं—'देवि ! तुम हीं स्वाहा, स्वधा तथा वषट्कार हो । स्वर भी तुम्हारे रूप हैं । ....ऊंकार भी तुम हीं हो ।...देवि ! तुम हीं इस विश्व ब्रह्माण्ड को धारण करती हो ।....खंधारिणी शूलधारिणी...गदा, चक्र, शंख तथा धनुष धारण करनेवाली हो । .... बाण, भुसुण्डि तथा परिध ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं ।......' ऋग्वेद में वाक् स्वयं कहती है—'मैं देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवों के रूप में विचरती हूँ ।.....मैं ही ब्रह्मद्वेषियों का वध करने के लिए रुद्र के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाती हूँ ।.....'

महाभारत में तो मधु के मारनेवाले मधुसूदन भगवान विष्णु स्वयं हैं । दुर्गासप्तशती के अनुसार भी मधु तथा कैटभ को मारा था विष्णु ने ही, पर देवी ने इसमें उनका साथ दिया था । वैदिक काल में 'मधु' वर्ष के प्रथम मास का नाम था । मधु तथा माधव ये दोनों महीने वसन्त ऋतु के होते थे । अतः मधु संवत्सर का शिर था । बृहदारण्यकोषनिषद् में संवत्सर तथा यज्ञ दोनों को ही प्रजापति कहा गया है । यज्ञ तथा यज्ञीय अश्व का अनेक स्थानों में समीकरण किया गया है । यज्ञ में अश्व का वध होता था । उषा को भी यज्ञीय अश्व का शिर कहा गया है तथा ऋग्वेद के इन्द्र उषा के रथ का ध्वंस करनेवाले हैं ।

छान्दोग्योपनिषद् में आदित्य को देवमधु, उसकी किरणों को भ्रमर तथा दिशाओं को मधुनाडी कहा गया है ।[1] इन्द्र के मेघ से सूर्य आच्छादित हो जाता

(१) छा० उ० १।३

है तथा सूर्य के तिरोहित होने पर उसके स्थान पर तड़ित् अर्थात् वाक् देवी का प्रकाश सूर्य के समान रहता है । देवी द्वारा मधु का यही वध है । कैटभ अथवा केतु भी चन्द्रमा अथवा सूर्य ही है जो अकेतु अर्थात् अचेतन को केतु अर्थात् चेतनशील करता है । मिस्र की देवी 'आइसिस' भी महर्षि अम्भृण की पुत्री 'वाक्' की भांति प्रथमतः एक मानुषी स्त्री थी पर पीछे उन्होंने अपनी अद्भुत शक्ति से सूर्यदेव 'रा' को बस में कर लिया ।[१] धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ, शुम्भ इन सभी राक्षसों का वर्णन ऋग्वेदोक्त वृत्र तथा उसके अनुचरों के वर्णन से मिलता-जुलता है । महिषासुर भी महान असुर सूर्य ही है जिसकी माता अदिति ने ऋग्वेद में अपने पुत्र आदित्य को महिष अर्थात महान कह कर पुकारा । महिषासुर का वध भी वृष्टि द्वारा सूर्य की लोकनाशक प्रवृत्ति के दमन का रूपक है अन्यथा महिषासुर-वध महान आच्छादक वृत्र का ही वध है । विष्णु द्वारा मधुकैटभ का वध कदाचित संवत्सर द्वारा सूर्य तथा चन्द्रमा का नियमबद्ध होना है । वाक् ही विष्णु की 'शक्ति' को प्रत्यक्ष करनेवाली है ।

महिषासुरमर्दिनी देवी का जन्म विष्णु अर्थात् यज्ञ तथा रुद्र अर्थात् वायु के क्रोध से हुआ । देवी के शरीर में ही सभी देवता हैं तथा देवी ने उन सभी से आयुध लेकर असुर पर प्रहार किया ।[२] देवी ने 'अट्टहास तथा गर्जन के साथ' महिषासुर पर प्रहार किया । देवी तथा असुर ने एक दूसरे पर दीप्तिमान अस्त्र फेंके । असुरों के रक्त से बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने लगीं । ऋग्वेदोक्त वृत्र भी मारा जाकर जल के रूप में पृथ्वी पर आ गिरा । असुरों के रक्त की नदियों के विषय में अंगरेजी-पुस्तक 'वर्ल्ड्स इन कौलीजन' के लेखक ने बड़े-बड़े अटकल लगाये हैं । पर मध्यपूर्व की बड़ी-बड़ी नदियाँ नाइल, टाइग्रिस, यूफ्रेट्स आदि बाढ़ के दिनों में मिट्टी के कारण लाल रंग की ही हो जाती थीं तथा अब भी भारत की नदियों का यही हाल होता है । मिस्र में नाइल नदी की बाढ़ को 'असरआ' अथवा 'असुर' 'ओसाइरिस' के मृत शरीर वा रक्त मानते थे ।

मिस्र में यव आदि अन्न की फसल को काटते समय 'असरआ' के लिए रुदन करते थ क्योंकि अन्न को 'असरआ' के शरीर का खंड माना जाता था ।[३] फसल का काटना भी संवत्सर के आरंभ अर्थात् मधुमास में होता है अतएव यह भी मधुमास के 'असुर' मधु का वध है ।

---

(१) Egyption Myth and Legend. P. 5. (२) दुर्गासप्तशती—अध्याय २
(३) Egyption Myth and Legend. P. 27

कौशिक-सूत्र में कृषि की देवी सीता अर्थात् खेत में हल द्वारा किये गये गढ़े की अधिष्ठात्री देवी की वन्दना इस प्रकार की गयी है—'कालनेत्रे हविषो नो जुषस्व तृप्तिं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे। याभिर्देवा आसुरा नकल्पयन् यातून्मनून् गन्धर्वान् राक्षसांश्च। ताभिर्नो अद्य सुमना उपा गहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा। हिरण्यस्रक्पुष्करिणी श्यामा सर्वांगशोभिनी ......।' इस वर्णन म ऋग्वेदोक्त वाक् अथवा अदिति तथा दुर्गासप्तशती के देवी-वर्णन दोनों का ही समावेश है। अदिति रूप से आकाश, वाक् रूप से अन्तरिक्ष तथा सीता-काली वा दुर्गा रूप से पृथ्वी पर रहनेवाली देवी क्रमशः आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी अथवा निखिल विश्व की मातृशक्ति हैं जिनसे उद्भिद, चतुष्पद तथा द्विपद सभी की उत्पत्ति है तथा जो अपनी सन्तान की रक्षा के हेतु हिंसक शक्तियों का दमन अर्थात् असुरों का संहार करती रहती है।

नवाँ अध्याय

त्रिविक्रम विष्णु

ऋग्वेद के मन्त्रों में विष्णु का नाम अपेक्षाकृत कम स्थानों में आया है इसी से उस समय विष्णु की महत्ता का ठीक-ठीक पता नहीं चल पाता। ऋग्वेद के मन्त्र तो सोमयज्ञ के मन्त्र हैं जिसके प्रधान देवता इन्द्र हैं। संभवतः आर्यों की कुछ टोलियों में विष्णु की महत्ता ऋग्वेद के अन्य देवताओं से अधिक रही हो।

ऋग्वेद में विष्ण अपने तीन विक्रम अथवा त्रिविक्रम के लिए प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेदोक्त वैष्णव-सूक्तों से उनके भौतिक रूप पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। इनमें से प्रमुख मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जा रहा है—

'विष्णु ने सात धाम अर्थात् छन्दों द्वारा पृथ्वी का अतिक्रमण करके इसे देवताओं के रक्षायोग्य बनाया। विष्णु ने इसे तीन प्रकार अथवा तीन पग में पार किया। विष्णु के पग की धूल से अन्तरिक्ष भर गया। विष्णु, जो निर्भीक गोपा अर्थात् रक्षक हैं, तीन पग में ही सब को पार कर गये। तब से ही जगत में धर्म के लिए वे आधार हुए। विष्णु सभी कर्मों को देखते हैं। उनसे ही व्रत पूरे होते हैं। वे इन्द्र के योग्य सखा हैं। विष्णु के परम पद को विद्वान सदा देखते रहते हैं जैसे आकाशस्थित कोई वस्तु निरोधाभाव से सहज ही दृष्टिगोचर हो। विप्र लोग विपत्ति से बचने के लिए जागरूक होकर विष्णु के परम पद पर अग्नि में ईंधन डालते रहते हैं।'[1]

विष्णु ने ही पृथ्वी तथा आकाश बनाये। तीन प्रकार चलनेवाले विष्णु ने ही तीनों लोक बनाये, जिसके तीन विक्रम में सारे भुवन तथा विश्व का क्षय हो जाता है अर्थात् विक्रान्त हो जाते हैं, उस विष्णु की शक्ति से

---

(१) ऋ० सं० १।२२।१६-२१

ही कुचर अर्थात् कुमार्गगामी वा अत्याचारी गिरिष्ठ अर्थात् पर्वत में रहनेवाले सिंह के समान भयावह हिंसक जीव अथवा आर्यों के शत्रु भयभीत हो जाते हैं। सर्वव्यापक गिरिवत उन्नत प्रदेश में रहनेवाले अनेक प्रकार से वन्दनीय (कामनाओं को) बरसानेवाले विष्णु को हमारे शुभ कर्म एवं हमारी प्रार्थना से होनेवाला बल प्राप्त हो। विष्णु ने ही तीन पगों से यह विशाल जगत रचा। विष्णु के तीनों पग मधु अर्थात् मधुर पदार्थों से परिपूर्ण हैं। इनका क्षय कभी नहीं होता। वे अन्न द्वारा अपने आश्रितों को शक्तिशाली बनाते हैं। एक विष्णु ने ही पृथ्वी, आकाश तथा विश्वसहित सभी भुवनोंको तीन प्रकार से धारण किया। जहाँ द्योतनशील विष्णु के इच्छुक नर को तृप्ति होती है वह अन्तरिक्षस्थित विष्णु का प्रिय स्थान हमें प्राप्त हो। उरुक्रम विष्णु के इस परमपद पर मधु का भंडार है। अतिशय प्रार्थनीय विष्णु का परमपद उज्ज्वल किरणों द्वारा प्रकाशित है।[१]

इन्द्र तथा विष्णु का निवास मेघों के ऊपर है। उनके अनेक महान कर्म हैं। वे पृथ्वी के विभाग करके उसे मनुष्यों के भोग के योग्य बनाते हैं। स्वयं विष्णु माता, पिता तथा पुत्र तीनों ही हैं। विष्णु एक कर्म से पृथ्वी तथा दूसरे कर्म से आकाश का अतिक्रमण करके तीसरे कर्म में मनुष्यों की दृष्टि तथा पक्षियों की उड़ान के बाहर हो जाते हैं। चार के साथ नब्बे अर्थात् चार गुना नब्बे अथवा ३६० स्तुतियों से अर्थात् सन्ध्यागायत्री आदि से विष्णु ही इस संवत्सर-चक्र को चलाते हैं।[२]

विष्णु हमारा मित्र है। वह हमारे लिए सुखकारी है। उसी के प्रताप से वृष्टि होती है तथा गायों को दूध होता है। उसका यश आकाश तक विस्तृत है। वह सबका रक्षक है तथा सर्वत्र फैला है। विष्णु राध्य अर्थात् आराध्य देवता है। विष्णु ही आदिकाल से इस जगत् में नित्य नयी विभूतियों का सृजन करते हैं। सर्वजगत को मदमत्त करनेवाली 'श्री' ही विष्णु की स्त्री है। प्रशंसा विष्णु के लिए है। विष्णु को हवि आदि अर्पण होते हैं। विष्णु के अनेक जन्म हुए हैं। विष्णु के उपासक को अन्न होता है। यज्ञ तथा उदक का गर्भ विष्णु है। विष्णु का नाम जाननेवाला पुरुषार्थी मनुष्य उसकी वन्दना करते हुए महान यज्ञ का लाभ करता है। मरुतों से सेवित यज्ञरूप विष्णु की वरुण तथा अश्विनी-कुमार भी पूजा करते हैं। देवतागण तथा यजमान विष्णु के सखा हैं। विष्णु उनके लिए अहः अर्थात् दिन का ज्ञान कराता है अर्थात् काल-विभाग द्वारा सृष्टि

(१) ऋ० सं० १।१५४ (२) ऋ० सं० १।१५५

को नियमित करता है। विष्णु उनके लिए व्रज अर्थात् चारागाह अथवा मेघ को प्राप्त करता है। ज्योतिष्मान विष्णु यज्ञ में स्वयं आता है। इन्द्र सरीखे यजमान के सुख तथा विजय का कारण विष्णु ही है। त्रिविक्रम विष्णु आर्यों की रक्षा करता है।[१]

अपरिमित शरीरवाले विष्णु की महिमा सर्वव्यापी है। हे विष्णु! तुम पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष ही नहीं, स्वर्ग को भी जानते हो। हे विष्णु! न तो तुम्हारा जन्म होता है और न तुम्हारा अवसान ही होता है। इस द्युतिमान आकाश का आधार भी तुम ही हो। पृथ्वी तथा दिशाओं के आधार भी तुम ही हो। इरावती, गोमती तथा सुन्दर द्यावा पृथ्वी के आधार विष्णु हैं। पृथ्वी के पर्वतों को धारण करनेवाले भी विष्णु हैं। इन्द्र तथा विष्णु ने यज्ञ के लिए ही इस विस्तीर्ण जगत की सृष्टि की। उन्होंने सूर्य, उषा तथा अग्नि की रचना की है। उन्होंने वृषशिप्र नामक दास की सेना को संग्राम में नष्ट कर दिया। इन्द्र तथा विष्णु ने मिलकर शंबर नामक असुर के निन्यानबे पुरों को नष्ट कर डाला तथा शत सहस्र-संख्यक वीर दस्यु योद्धाओं को मृत्यु के पास पहुँचाया। विष्णु के साहाय्य से ही इन्द्र इतने पराक्रमी हुए।[२]

वषट्कार के साथ हवि अर्पण विष्णु के लिए ही होता है। रश्मियों से आविष्ट सूर्यरूप विष्णु हमारी हवि ग्रहण करें। हम विष्णु की स्तुति करें। विष्णु हम मनुष्यों में से धन के इच्छुक को धन देता है। विष्णु की कीर्तियां अनेक हैं। मन से विष्णु की ही पूजा करनी चाहिये। हे विष्णु! हमें सभी जनों के हित के लिए सुमति दो। हमें धन, अश्व तथा अन्न भी दो। विष्णुने पृथ्वी आदि तीनों लोकों को अपनी महिमा से पार कर लिया। विष्णु ने पृथ्वी आदि तीनों लोकों को मनुष्य तथा देवताओं के निवास-योग्य बनाने के हेतु उन्हें 'दशस्य' अर्थात् हिंसक राक्षसों से विमुक्त किया। विष्णु के भक्त ध्रुव अर्थात् निश्चल होते हैं। रश्मियों से युक्त दूर आकाश में रहनेवाले सूर्य ही विष्णु हैं पर संग्राम में यह रूप त्याग कर विष्णु कृत्रिम-रूप धारण कर के आते हैं तथा भक्तों को ही उनका यह गुप्त रूप ज्ञात होता है।[३]

ऋग्वेदोक्त विष्णु के इस वर्णन का अर्थ और्णवाभ ने यह लगाया है कि विष्णु सूर्यदेवता हैं तथा उनके तीन पग प्रातः, मध्याह्न तथा संध्या हैं। परन्तु शाकपूणि ने इन तीनो पगों को पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश माना है। 'विश्' धातु से विष्णु का अर्थ जनक अर्थात् प्रजा को उत्पन्न करनेवाला हो सकता है। कुछ आधुनिक विद्वानों ने 'सानु' अर्थात् पृष्ठ शब्द से विष्णु का अर्थ संसार के 'पृष्ठ को पार करनेवाला' बताया है।[४] प्रजा उत्पन्न करनेवाले त्रिपाद 'पुरुष' नारायण विष्णु का वर्णन ऋग्वेद के प्रसिद्ध पुरुषसूक्त में इस प्रकार है—

(१) ऋ० सं० १।१५६ (२) ऋ० सं० ७।९९ (३) ऋ० सं० ७।१०० (४) Mythology of All Races-India. P. 29.

सहस्र शिर, चक्षु तथा पांववाला आदिपुरुष समस्त विश्व को अपनी दश उंगलियों में ही समाविष्ट किये हुए था। जगत में अब तक जो कुछ हुआ है या होगा वह सब उसी पुरुष में है। देवताओं का वही स्वामी है। वही अन्न के रूप में प्रकट होता है। वह पुरुष अपनी महिमाओं से कहीं अधिक महान है। उसके तीन पांव ही आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी हैं। उस विराट पुरुष के पांव-रूपी संसार पुनः पुनः बनते तथा नष्ट होते हैं। उस पुरुष से ही विराट उत्पन्न हुआ। उस पुरुष ने विराट को आधार बनाया। उसने अपने को देव, तिर्यक, मनुष्यादि भागों में विभक्त किया। फिर उसने इन विभागों की आधारभूता पृथ्वी को बनाया। देवताओं के समय समय पर उस विराट को हवि अर्पण करने से वसन्त, ग्रीष्म, शरद् आदि की उत्पत्ति हुई। उसी यूपबद्ध यज्ञ-पशु के स्वरूप पुरुष से देव, साध्य तथा ऋषि उत्पन्न हुए। उस सर्वात्मक पुरुष के यज्ञ से ही संसार के सभी भोग उत्पन्न हुए। वायु तथा वन के पशु भी उसी से बने। ग्राम्य पशु भी उसीसे बन। उस यज्ञात्मक पुरुष से अथवा उस सर्वात्मक पुरुष के यज्ञ से ही अश्व, गर्दभ, गो आदि पशु उत्पन्न हुए। उस पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। उसके मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र तथा अग्नि एवं प्राण से वायु उत्पन्न हुए। उसके शिर से आकाश, नाभि से अन्तरिक्ष तथा पैर से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।[१]

विष्णु समस्त सृष्टि के प्रतीक होने के कारण आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी तीनों में वर्तमान हैं। सृष्टि के ये तीनों खंड उनके तीन पग हैं। उन्होंने पर्वतों को भी धारण कर रखा है तथा उनके रूप अनेक हैं। वह दस्युओं के हन्ता तथा इन्द्र के सखा हैं। उनके शरीर, मन, प्राण आदि से अर्थात् उनके बलिदान से, यज्ञ से वा उनके द्वारा किये गये यज्ञ से यह सारी जीव-निर्जीव सृष्टि उत्पन्न हुई।

इन वर्णनों में विष्णु के तीन पग से विश्व का नियमबद्ध होना अर्थात् बलशाली असुर बलि का बांधा जाना स्पष्ट ही हो जाता है। इस द्यावापृथ्वी को नियमबद्ध करके ही विष्णु भूमि को अन्न तथा गो से परिपूर्ण करते हैं। कदाचित् ऋग्वेदकाल में विश्व को नियमबद्ध करनेवाले देवता सूर्य ही विष्णु थे। फिर भी विष्णु के पग से थल का उड़ना तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं आकाश तीनों में विष्णु के तीन पगों का होना समझ में नहीं आता। इसका एक अन्य अर्थ जो अधिक संगत जान पड़ता है, यजुर्वेद तथा शतपथब्राह्मण में दिया है।

(१) ऋ० सं० १०।९०

यजुर्वेद में यज्ञ की प्रशंसा इस प्रकार की गयी है--'यज्ञ घृताची अर्थात् घृत उत्पन्न करनेवाला अर्थात् वृष्टिकारक है। यज्ञ करने से वृष्टि होती है। यज्ञ ध्रुव अर्थात् अनश्वर है। यज्ञ धाम से उत्पन्न अर्थात् इस उत्तान पृथ्वी से उत्पन्न है। यज्ञ की पूजा नाम अर्थात् स्तुति से होती है। यज्ञ ऋत की योनि अर्थात् धर्म का उद्गम स्थान है। विष्णु यज्ञ की रक्षा करें। विष्णु यज्ञपति की रक्षा करें।[1] वसु, रुद्र आदित्यों के साथ यज्ञ द्यावा पृथ्वी को परिपूर्ण करता है। मित्र तथा वरुण यज्ञ से ही जल बरसाते हैं। मरुतों के साथ यज्ञ का धूम्र पृथ्वी से अन्तरिक्ष होकर आकाश में जाता है तथा वृष्टि को ले आता है। अग्नि यज्ञ का चक्षु है। अग्नि हमारे चक्षु की रक्षा करें।'[2]

यज्ञ से सम्बद्ध वा यज्ञ के रक्षक देवता विष्णु की यजुर्वेद में प्रार्थना इस प्रकार की गयी है--'विष्णु ही विश्व हैं। विष्णु पवित्ररूप से समग्र विश्व में वर्तमान हैं। विष्णु अक्षय हैं, ध्रुव हैं। विष्णु पोषक हैं।'[3] ऐतरेयब्राह्मण (१।२३) में देवों द्वारा यज्ञ में तीन उपसद द्वारा असुरों का पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश से हटाये जाने का वर्णन है। यज्ञ के ये तीन उपसद भी विष्णु के त्रिविक्रम हैं।

शतपथब्राह्मण में विष्णु का यज्ञ से सम्बन्ध और भी स्पष्ट कर दिया गया है। 'अथाक्रमते। विष्णुस्त्वा क्रमतामिति यज्ञो वै विष्णुः स देवेभ्य इमां विक्रान्तिं विचक्र मे येषामियं विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन पस्पाराथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन दिव मुक्षमेनैताम्वेवैष एतस्मै विष्णुर्यज्ञों विक्रान्तिं विक्रमते।'--(शतपथ-ब्राह्मण १।२)। विष्णु ही यज्ञ हैं। यज्ञ प्रथम पद से पृथ्वी, द्वितीय से अन्तरिक्ष तथा तृतीय से आकाश का अतिक्रमण कर लेता है अथवा प्रथम पद से पृथ्वी से अन्तरिक्ष में जाकर द्वितीय पद से आकाश में चला जाता है तथा उत्तम तृतीय पद से सारी सृष्टि को बाँध लेता है।

राजा बलि बलशाली आसुरी शक्ति के प्रतीक थे। भगवान विष्णु ने उन्हें बद्ध अर्थात् नियमबद्ध करने के हेतु वामनरूप धारण किया। पुराणों में तो वामन का अर्थ बौना माना गया है। परन्तु यजुर्वेद में वामन रुद्र का भी एक विशेषण है जिसकी व्याख्या महर्षि दयानन्द ने इस प्रकार की है--'वामं प्रशंस्तं विज्ञानं विद्यते यस्य।' इस अर्थ से विज्ञान अथवा प्रज्ञा से युक्त यज्ञ ही वामन है। राजा बलि का असुरराज प्रह्लाद का पौत्र होना संभवतः किसी अनार्य राजा की कहानी से सम्बद्ध है जो पीछे चलकर आर्यों के देवता विष्णु के पूजक हो

---

(१) वा० सं० २।६ (२) वा० सं० २।१६ (३) वा० सं० ५।२१

गये । परन्तु भागवत में वामन अवतार के जन्म का समय भी बताया हुआ है और वह इस प्रकार है । जिस समय वामन भगवान ने जन्म लिया उस समय चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर थे । भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की श्रवण नक्षत्र-वाली द्वादशी थी । अभिजित् मुहुर्त में भगवान का जन्म हुआ ।[१] अभिजित् मुहूर्त पौराणिक काल में शुभ माना जाता था । नक्षत्रों की गणना महाभारत के समय 'श्रवण' से ही आरंभ होती थी । 'प्रतिश्रवण पूर्वाणि नक्षत्राणि चकार यः ।[२] श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादयः ।'[३] वामन भगवान वर्ष के आरंभ के सूर्य थे । विष्णुपुराण के अनुसार सूर्य विष्णु के परम अंश हैं । वैष्णवोंऽशः परः सूर्यः ।[४]

अथर्ववेद[५] में सूर्य को ही स्पष्ट रूप से त्रिविक्रम विष्णु कहा गया है । 'जरायुजः प्रथम उस्त्रियो वृषा वातव्रजास्तनयन्नेति वृष्ट्या । सनो मृडाति तनऽ-ऋजुगो रुजन् एक मोजस्त्रेधा विचक्रमे ।' आकाश से उत्पन्न जगत में सर्वप्रथम उस्री अर्थात् किरणोंवाला, वात के समान शीघ्रगामी, वृष्टिकारी, मेघों के गर्जन से यह आदित्य तीनो लोकों में अपना प्रभाव फैलाकर हमें हर्षित करे ।

वेद तथा पुराणों में सम्भवतः विष्णु नाम से सूर्य की ही पूजा हुई परन्तु ब्राह्मणों में विष्णु यज्ञ के अथवा यज्ञाग्नि देवता माने गये । सूर्य भी अग्नि का ही वैश्वानर रूप है अतः इन दो विचारों में कोई वास्तविक भेद नहीं है ।

---

(१) भागवत ८।१८ (२) महाभारत आदिपर्व ७१ (३) अश्वमेधपर्व ४४ (४) विष्णुपुराण २।८।५६ (५) अ० सं० १।३।१।१

दसवाँ अध्याय

वराह, कूर्म तथा मत्स्य अवतार

विष्णु के अवतार अनेक हैं। इन अवतारों का बीज कदाचित ऋग्वेदोक्त यह वर्णन है कि विष्णु युद्ध में रूप बदलकर जाते हैं तथा भक्तों द्वारा पूछे जाने से ही अपना नाम बताते हैं। 'वराह अवतार' की सबसे प्राचीन भारतीय कथा तत्तिरीयब्राह्मण में इस प्रकार है—'पहले यह सब कुछ विकारहीन जल से परिपूर्ण था। उससे सृष्टि-निर्माण करने के हेतु प्रजापति ने तप किया। उन्होंने उस जल पर कुछ देखा। उन्होंने देखा कि वह एक कमल पुष्प का विशाल पत्र था। उन्होंने सोचा, यह तो है पर यह किस पर आधारभूत है। अपना रूप वराह का बनाकर वह जल में डूबे। जल में उन्होंने पृथ्वी को पाया। उसे अपने निकले हुए दांतों पर रखकर जल से निकाला। कमल के उस विस्तृत पत्ते पर उस मृत्तिकापिंड को फैलाया अर्थात् उसका प्रथन किया। यही पृथ्वी का पृथिवित्व है। पृथ्वी 'भूत' हुई। यही उसका भूमित्व है।'[१]

मिस्र के 'असरआ' अथवा ओसायरिस तथा ऋग्वेद के रुद्र दोनों ही 'वराह' कहलाये हैं।[२] परन्तु ऋग्वेद में वराह विष्णु देवता का रूप न होकर विष्णु तथा इन्द्र का शत्रु है जिसपर वे प्रहार करते हैं। 'अनेक विक्रमवाले विष्णु अर्थात् व्यापनशील परमैश्वर्यशाली इन्द्र देवता दस्युओं वा हिंसाकारियों का सब कुछ हरण करके क्षीर, पाक, मिष्टान्न आदि से परिपूर्ण सैकड़ों यज्ञ करके अर्थात् सैकड़ों प्रकार इनसे पृथ्वी को परिपूर्ण करते हुए, हिंसाकारियों वा ध्वंसकारियों में प्रमुख वराह अर्थात् पौधों का वर अथवा मूल उखाड़नेवाले किंवा जलनिरोधक वृत्र का निराकरण करते हैं।'[३]

---

(१) तै० ब्रा० १।१।३।१८–१९ (२) Egyption Myth and Legend.—P. 64
(३) ऋ० सं० ८।७७।१०

परन्तु ऋग्वेद में 'वराह' शब्द अन्य अर्थों में भी व्यवहृत हुआ है। 'वर अर्थात् उदक जिसका आहार है' वह मेघ अथवा घृतादिरूपी उदक भक्षण करनेवाले अग्नि दोनों को ही वराह कहा गया है। जलनिरोधक वृत्र, जो जल को हर लेता है, वराह रूप में भी इन्द्र द्वारा निहत हुआ।[1] परन्तु अंगिरस अग्निरूपी वराह ने 'गोधायस्' अर्थात् गो अथवा जल धारण करनेवाले वृत्र को विदीर्ण करके वृष्टि को पृथ्वी पर लाया अर्थात् जल से पृथ्वी का उद्धार किया।[2]

विष्णुपुराण में वराह अवतार की कथा इस प्रकार दी गयी है। '...ब्रह्मा ने सम्पूर्ण लोकों को शून्यमय देखा।...सम्पूर्ण जगत जल अर्थात् शून्य से परिपूर्ण था अर्थात् जगत में कुछ भी न था।....भगवान ने वेद यज्ञमय वराह रूप धारण किया।..भगवान धरणीधर ने घर्घर शब्द से गर्जना की।...वे महावराह...पृथ्वी को लेकर बाहर निकले....।'[3] यह वर्णन स्पष्ट ही मेघ की वर्षा से सृष्टि के पुनः उत्पन्न होने का है। वराह गरजनेवाला मेघ ही है। अथवा वराह यज्ञ की अग्नि है जिससे मेघ जल बरसाते हैं।

भागवत में वराह की कथा में हिरण्याक्ष दैत्य को भी लाया गया है। यही दैत्य पृथ्वी को पाताल ले गया था। वराह ने दैत्य की हत्या कर के पृथ्वी का उद्धार किया।[4] इस कथा में भी हिरण्याक्ष के दैवी उद्गम का भास मिलता है। भगवान विष्णु के प्रिय पारषद जय तथा विजय ही सनकादि मुनियों का अनादर करने के कारण हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु बन कर जनमे थे। ऋग्वेद में स्वयं सूर्यदेव सविता को हिरण्याक्ष कहा गया है।[5] परन्तु ऋग्वेद में सविता बलशाली असुर भी है तथा मिस्र के सूर्यदेव 'रा' की भांति भारत में भी सूर्य-देवता सर्वदा सृष्टि के मित्र ही नहीं कभी-कभी शत्रु जैसे भी दिखाई देते हैं। पुनः इन्द्र-शत्रु वृत्र के अनुचर जलनिरोधक मेघखंड, जो सूर्य की ज्योति से वा विद्युत के प्रकाश से सोने की भांति चमकते हैं, उनको भी ऋग्वेद में हिरण्य से सम्बद्ध कहा गया है। 'चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः।'[6] जलनिरोधक अथवा पृथ्वी को आच्छादन करनेवाला वृत्र भी हिरण्य जैसा है जिसके विदीर्ण होने से उसका जल पृथ्वी पर बरस कर ~~रह~~ गया तथा पृथ्वी का उस घिरी हुई जलराशि से उद्धार हुआ। वराह-यज्ञ अथवा मेघ है। यज्ञ ही विष्णु भी है। हिरण्याक्ष ग्रीष्म में कष्ट देनेवाला सूर्य अथवा

(१) ऋ० सं० १।६१।७ (२) ऋ० सं० १०।६७।७ (३) वि० पु० १।४ (४) भागवत ३।१७–१८–१९ (५) ऋ० सं० १।३५।८ (६) ऋ० सं० १।३३।८

जलनिरोधक वा अच्छादक वृत्र है। हिरण्याक्ष वध भी अनेक दूसरी हिन्दू धार्मिक कथाओं की भांति अनावृष्टि पर वृष्टिकारक शक्तियों की विजय का ही रूपक है।

कच्छप अथवा कूर्म अवतार के अर्वाचीन रूप का सर्वप्रथम वर्णन वाल्मीकि-रामायण में है। जब देवासुरों की मथानी अर्थात् मंदराचल पर्वत पाताल को चला गया, तब विष्णु ने कच्छप रूप धारण कर उस पर्वत को उभार कर फिर अपनी पीठ पर रखा।[1]

शतपथब्राह्मण में निम्नलिखित वर्णन है--'चक्षुषी ह्वा अस्य शुक्रामंथिनौ। अयं वेनश्चोदयत पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमान इति तदेतस्य रूप-कूर्मो य एष तपतीति यदाह ज्योतिर्जरायुरिति।'[2] 'उज्जवल सूर्य-चन्द्रमा अथवा शुक्र एवं चन्द्रमा ही मन्थी हैं। विद्युत् रूप से चमकनेवाला वेन कूर्म के समान निवास करता है। यह वेन आदित्य के गर्भ जल अर्थात् अन्तरिक्ष में मेघ के उदर में शयन करता है जैसे जल में कूर्म रहता है।' यों तो कूर्म का कर्म के साथ सम्बन्ध स्थापित कर के कूर्म को प्रजापति ब्रह्मा का रूप भी माना जा सकता है जो शब्द-समानता से कच्छप तथा कश्यप भी हो गया। परन्तु प्राचीन देशों की जलमयी भुवन-संख्या में जलजन्तु कच्छप का स्थान होना स्वाभाविक था। चीनी 'ताओ' धर्म में पुण्यात्माओं के निवास के हेतु ईश्वर के बनाये पांच द्वीपों की कल्पना है। पहले यह समुद्र पर ज्वार-भाटा के साथ हिलते रहते थे जिससे द्वीपों पर रहनेवालों को कष्ट होता था। उनका दुःख देखकर परमेश्वर ने प्रत्येक द्वीप को उठा रखने के हेतु तीन-तीन महान कछुओं को संलग्न किया।

जापान के ब्रह्मा का रूप कछुए जैसा है। उनके ऊपर विश्ववृक्ष आधारभूत है तथा उस वृक्ष के ऊपर एक चतुर्मुख देवता बैठते हैं। चीन में कछुए को ईश्वर का चिह्न मानते हैं। कछुए की हड्डी राजकीय चिह्नों में व्यवहृत होती थी।[3] छोटानागपुर की आदिम जातियों में कई एक का धार्मिक चिह्न कछुआ है तथा वे कछुए का मांस नहीं खाते।

चीन की जगज्जननी 'सिवांग मू' के चार पारषद क्रमशः नीलवर्ण सारस, श्वेतवर्ण व्याघ्र, मृग तथा कच्छप हैं जो चारो ही चीन में देवताओं के रूप माने जाते थे। जब चीन का राजा 'याओ' बहुत दिनों तक राज्य कर चुका

(१) बालकाण्ड ४५ (२) श० ब्रा० ४।२।१ (३) Myths of China and Japan.—P. 111, 112, 140, 280.

था तब एक कछुए ने जल से निकल कर उसे अपने पुत्र 'शुन' को राज्य दे देने का सन्देश दिया ।[१] जापान की 'आइनु' जाति के दो प्रधान देवता थे, समुद्र विशाल कच्छप तथा पृथ्वी पर उलूक । भारतीय ज्योतिष के ग्रन्थों में नक्षत्रों के चक्र को कूर्म कहते हैं। पाश्चात्य विद्वान हेविट ने अपने ग्रन्थ--'रूलिंग रेसेस आफ प्रिहिस्टोरिक टाइम्स'--में बताया है कि प्राचीन जातियों द्वारा पृथ्वी का कल्पित रूप कछुए की पीठ जैसा माना जाता था ।

समुद्र-मन्थन की कल्पना के साथ प्राचीन जातियों के जलदेव कच्छप की कल्पना स्वाभाविक थी तथा ऋग्वेद में विष्णु को ही अनेकों रूप धारण करने-वाला बताया गया है अतः भारतीय धार्मिक कथाओं में यह कच्छप विष्णु का ही अवतार बना । कदाचित इसमें ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित सृष्टि-क्रम की कथाओं से भी पुष्टि मिली ।

कूर्म की भांति मत्स्य भी जल का जन्तु है तथा जल अर्थात् नार में शयन करनेवाले नारायण के मत्स्य रूप की कल्पना भी स्वाभाविक रूप से ही आयी। इस कथा में भगवान विष्णु ने मत्स्य का रूप धारण कर राजर्षि सत्यव्रत को आनेवाले प्रलय से सावधान किया था तथा प्रलय आने पर उन्हें बचाया था । यही सत्यव्रत वैवस्वत मनु हुए । इस कथा में सबसे विचित्र बात यह है कि यह दैवी मत्स्य आरंभ में अत्यन्त छोटा था तथा इसने मनु से बड़ी मछलियों तथा जल-जन्तुओं से रक्षा की प्रार्थना की । फिर यह मत्स्य बढ़ता गया तथा अन्त में समुद्र में तिरोहित हो गया । परन्तु महाप्रलय आने पर पुनः प्रकट होकर मनु की रक्षा की । इस कथा का आरंभ सुमेर की यूफ्रेट्स नदी के तट पर स्थित एरिदू नगर के 'या' देवता से माना जाता है ।[२] एरिदू के 'या' देवता का रूप मछली-जैसा था । एरिदू में यूफ्रेट्स नदी की भी पूजा होती थी तथा वास्तव में मत्स्याकार 'या' देवता नदी के ही प्रतीक थे । वर्षाऋतु में यूफ्रेट्स का बढ़ना ही 'या' मत्स्य का बढ़ना था । यूफ्रेट्स नदी की उपजाऊ मिट्टी, नदी का जल, जिससे सिंचाई के नाले भरते थे, नदी में छोटी नावों को बनाकर फिर बड़ी नावों तथा समुद्र में जानेवाले जहाजों का बनाना, इन सभी प्रकारों से यूफ्रेट्स नदी के 'या' देवता ने ही एरिदू के निवासियों को प्रकृति पर अधिकार पाना सिखाया ।

---

(१) Myths of China and Japan.—P. 280

(२) Myths of Babylon and Assyria.—P. 27, 28, 29

'मत्स्य' को मिस्र में पवित्र मानते थे। यह पुरुष के जननेन्द्रिय का प्रतीक माना जाता था। माता 'आइसिस' की अनेक मूर्तियों में इन देवी के शिर पर विश्व के पिताशक्ति का प्रतीक एक मत्स्य रखा हुआ है। प्राचीन मिस्र में मंदिरों के पुजारी मछली नहीं खा सकते थे।

जैसा कहा जा चुका है, ऋग्वेद में इन्द्र को भी जल में रहनेवाला महा-मत्स्य कहा गया है। कालान्तर से अनेक रूपधारी विष्णु ही 'मत्स्य' अवतार के देवता माने गये।

ग्यारहवाँ अध्याय

चतुर्भुज विष्णु तथा उनके पारषद

शतपथब्राह्मण के द्वितीय अध्याय पंचम ब्राह्मण में यज्ञरूप विष्णु का विस्तारपूर्वक इतिहास दिया गया है। देवता तथा असुर दोनों ही प्रजापति के पुत्र थे। उनमें परस्पर स्पर्धा थी। असुरों का बल बहुत बढ़ गया था तथा वह सारे जगत को अपना समझने लगे। देवता उनके पास पृथ्वी में अपने भाग के लिए यज्ञात्मक विष्णु को साथ लेकर गये। विष्णु वामन थे। असुरों ने देवताओं को उतनी ही पृथ्वी दी जितने में वामन लेट सकें। देवताओं ने प्राची दिशा से यज्ञात्मक विष्णु को भूमि में डालकर दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तर से गायत्री आदि छन्दों द्वारा उनकी वन्दना करते हुए समस्त पृथ्वी को प्राप्त कर लिया। जैसी यज्ञवेदी है वैसी ही पृथ्वी है। वेदी के पूर्व में देवता, दक्षिण में पितर, पश्चिम में मनुष्य तथा उत्तर में रुद्र रहते हैं। वेदी की भुजाओं के ही खंड ऋतु, मास, आदि हैं।

ऐतरेयब्राह्मण में यज्ञ की अग्नि को ही विष्णु कहा गया है। 'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः। तदन्तरेष सर्वा अन्या देवताः।'[1] ऋग्वेद में अग्नि के चार शृंग कहे गये हैं जिनका अर्थ चार दिशाएँ अथवा चार वेद माना जाता है।[2] इन्द्र का वज्र भी चतुष्कोण वा चतुर्भुज ही था।[3]

यजुर्वेद में विष्णु को ध्रुव अर्थात् अनश्वर एवं आकाश की ध्रुवा दिशा का रक्षक माना गया। 'विष्णो रराटमसि विष्णो श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णो ध्रुवसि'--(य०वे० ५।२१)। 'विष्णु निखिल विश्व हैं, विष्णु पवित्र हैं, पालन करने-वाले हैं, फैले हुए हैं तथा ध्रुव हैं।' अथर्ववेद में विष्णु को ध्रुवा दिशा अर्थात् खगोल के उत्तर ध्रुव का अधिपति माना गया है। 'ध्रुवादिग् विष्णुरधिपतिः

(१) ऐ० ब्रा० १।१ (२) ऋ० सं० ४।५८।१, श० ब्रा० २।३ (३) श० ब्रा० २।४

कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरूध इषवः ।'[1] ध्रुवा दिशा के विष्णु अधिपति हैं। कल्माषग्रीव अर्थात् कृष्ण वा नीलवर्ण कंठ हो जिसका वैसे रुद्र वा सर्प से यह दिशा रक्षित है तथा विरोहणशील ओषधियाँ इस दिशा के आयुध वा अस्त्र हैं।

विष्णु के चार हाथों में प्रसिद्ध शंख, चक्र, गदा तथा पद्म ये चार आयुध माने गये हैं। हिन्दूधर्म के इतिहास में ठीक-ठीक किस समय इस चतुर्भुजी मूर्ति की पूजा आरंभ हुई यह बताना कठिन है। शंख को अथर्ववेद में सूर्य का रूप तथा शंख के शब्द को राक्षसों को नष्ट करनेवाला माना गया है। 'वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि। सन नो हिरण्यजा शंखः कृशनः पात्वंहसः। यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधिजज्ञिषे। शंखेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो (रक्षांस्थि-त्रिणो) विषहामहे। समुद्राज्जातो मणिर्वृत्रा ज्जातो दिवाकरः सो अस्मान्सर्वतः पातुहेत्यादेवासुरेभ्यः।'[2] हे शंख! जो वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत्, तारासमूह तथा सूर्य से उत्पन्न हुआ है हमारा शासन कर तथा पाप से हमें बचा। हे शंख! तू समुद्र से नक्षत्रादि के पहले उत्पन्न हुआ है। तुझसे राक्षसों की हत्या करके हिंसक वा मनुष्यभक्षी पिशाचादि का हम भलीभांति प्रतिकार करेंगे। समुद्र से शंखरूपी मणि उसी प्रकार निकलता है जैसे मेघमंडली से सूर्य। ये दोनों अर्थात् सूर्य तथा शंख हमारी तथा असुरों की हत्या करनेवाले देवताओं की सब प्रकार से रक्षा करें।

विष्णु के हाथ में पद्म का होना कदाचित सृष्टि के आरंभ में जलराशि के ऊपर पद्मपुष्प के पत्ते के होने से सम्बन्ध रखता है। वराह अवतार के सम्बन्ध में तैत्तरीयब्राह्मण का यह वर्णन पहले आ चुका है। पद्मपुष्प मिस्र में 'हा-थोर' नामक मातृदेवी का रूप था जिसमें से काल-विभाग द्वारा विश्व का शासन करनेवाले 'होरस' देवता निकले थे। चीन में 'हो सिनकु' तथा जापान में 'कासेनको' नाम की मातृदेवियाँ भी हाथ में कमलपुष्प धारण किये रहती थीं। चीन में मातृरूपी विश्व को कमलपुष्प जैसा माना जाता था। चीनी जगज्जननी का दूसरा रूप हाथ में फलों की टोकरी लिये हुए स्त्री का था। मिस्र की चित्रमयी भाषा में फलों की टोकरी को स्त्री, माता वा देवी का चिह्न माना जाता था। डानेल्ड मैकेन्जी के अनुसार प्राचीन देशों में कौड़ी तथा सीप को भी जनशक्ति का रूप मानते थे।[3] शंख तथा पद्म दोनों ही मातृशक्ति अर्थात् सृजन तथा पालनशक्ति के प्रतीक बनकर ही विष्णु के आयुध हुए।

(१) अ० वे० सं० ३।६।२।५ (२) अ० सं० ४।२।५।१, २, ५ (३) Myths of China and Japan. P. 171–2, 303

गदा स्पष्ट ही दुष्टों के हनन का साधन था। गदा राजकीय चिह्न भी था। अतएव इसका विष्णु का आयुध होना स्वाभाविक ही था।

ऋग्वेद में संवत्सर को द्वादश प्रधियोंवाला चक्र कहा गया है।[१] यह चक्र वृत्ताकार था अथवा किसी अन्य आकार का, यह कहना कठिन है। भारतीय ज्योतिष का राशिचक्र चतुर्भुजाकार बनता है पर उसमें बारह राशियों के बारह खंड रहते हैं। तांत्रिक राहुचक्र तथा अन्य चक्र भी वृत्ताकार न होकर अन्य आकारों के होते हैं। ऋग्वेद में इन्द्र को पृथ्वीरूपी चक्र की धुरी को धारण करने वाला बताया गया है।[२] परन्तु पृथ्वी को ऋग्वेद में ही अन्य स्थान पर चतुर्भृष्टि अर्थात् चतुर्भुज माना गया है।[३] आर्यों का चतुर्भुज स्वस्तिक चिह्न 卐 आकाश तथा पृथ्वी का अथवा समस्त भुवन का प्रतीक था। अनेक प्राचीन जातियाँ इस चिह्न को 'सृष्टि' का चिह्न मानकर पूजती थीं।[४] इन्द्र का वज्र भी चार किनारों का चक्र था।[५] शतपथब्राह्मण के चतुर्दश काण्ड में सूर्य को चतुर्भुज चक्र कहा गया है। स्पष्टतः विष्णु का सुदर्शन-चक्र निखिल विश्व, द्यावापृथ्वी, संवत्सर अथवा सूर्य है। विश्व, संवत्सर वा सूर्य का प्रतीक होकर ही 'चक्र' यथेष्ट महत्ता रखता है। परन्तु प्राचीन जगत में चक्र की पूजा तथा चक्र को सर्वप्रधान देवता का आयुध एक और कारण से माना गया है।

कुलाल चक्र अर्थात् कुम्हार के चाक का आविष्कार ईसवी सन् के लगभग ३००० वर्ष पूर्व मिस्र में हुआ। तब से ही यह देवताओं का दान माना जाने लगा। मिस्र में कुम्हार का चाक वहां के 'प्टा' देवता का चिह्न हुआ जो मिस्री धर्म के विश्वकर्मा थे। मिस्र से यह आविष्कार चीन तथा भारत को प्राप्त हुआ तथा दोनों ही देशों में इसे धार्मिक चिह्न माना गया। मिस्र के 'महादेव' 'असरआ' अथवा 'ओसायरिस' में मिस्र के सभी देवताओं के गुण मिला दिये गये थे। अतः वे भी चक्रधारी कुम्भकार माने गये। असीरिआ के प्रधान देवता 'असुर' वा 'अशुर' के चिह्न धनुष, चक्र तथा पक्षी थे। भारतीय रुद्र का चिह्न धनुष तथा विष्णु का चिह्न चक्र है। विष्णु का वाहन भी पक्षी गरुड़ ही है।[६]

विष्णु के आभूषण कौस्तुभमणि तथा मकराकृत कुंडल हैं। मकर राजा वरुण का वाहन है तथा अदिति को ऋग्वेद में कुँडलाकार कहा गया है। मिस्र देश के प्राचीन राजा गले में नीलवर्ण के मणि पहनते थे।

---

(१) ऋ०सं०१।१६४।४८ (२) ऋ०सं०१०।८९।४ (३) ऋ०सं०१०।५८।३ (४) Early Astronomy and Cosmology. P. 156 (५) ऋ० सं० ४।२२।२ (६) Myths of China and Japan-Chapter II, Myths of Babylonia and Assyria-Chapter XIV

विष्णुपुराण के अनुसार विष्णु के पारषदों में प्रमुख स्थान ध्रुव का है। जसा पहले कहा जा चुका है, विष्णु को ध्रुवा दिशा का अधिपति अर्थात् आकाश के ध्रुवभाग का अधिपति कहा गया है। यजुर्वेद[1] में विष्णु द्वारा रक्षित यज्ञ को ही ध्रुव कहा गया है। यज्ञ 'धाम' से अर्थात् स्थान से उत्पन्न होता है। 'धाम' स्थान वा लोक फैला हुआ अर्थात् उत्तान है। पृथ्वी विश्व का अधोभाग अर्थात् पद है। ऋग्वेदोक्त सृष्टि-क्रम में[2] उत्तानपद के रूप में ही पृथ्वीवृक्ष उत्पन्न हुआ था। उत्तानपद अथवा यज्ञपुरुष उत्तानपाद का पुत्र यज्ञ ही ध्रुव है। ध्रुव की माता सुनीति थी। ऋग्वेद[3] में असुनीति को प्राण या मन कहा गया है। जो असुओं को ले जाय वह असुनीति है। असुनीति का कालान्तर से सुनीति हो जाना असम्भव नहीं। उत्तानपाद की दूसरी स्त्री अर्थात् ध्रुव की विमाता सुरुचि थीं।[4] उत्तम भोग राग ही सुरुचि के पुत्र थे। उत्तानपाद-रूपी यजमान की सुरुचि अर्थात् रुचिकारक उत्तम भोगों में अधिक आसक्ति थी। सुनीति उन्हें यज्ञ की ओर ले जाती थी। यजमान ने उत्तम राजभोग से प्रेम किया तथा यज्ञ की अवहेलना की। फिर भी सप्तर्षियों अर्थात् सात वेद-प्रसिद्ध पुजारियों अथवा सात सद्गुणों अथवा सप्तर्षि नामक सात ताराओं की कृपा से यज्ञ की रक्षा हुई अर्थात् यज्ञ अनश्वर अर्थात् ध्रुव हुआ। ध्रुव तारा अनश्वर अचल यज्ञ का ही प्रतीक है।

चतुर्भुज विष्णु ध्रुवा दिशा के रक्षक हैं तथा क्षीरसागर में शयन करते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, सागर का अर्थ प्राचीन काल में आकाश भी था। क्षीर का अर्थ दूध भी है। रजत-पथ 'मिल्की वे' अथवा आकाशगंगा रूपी दूध के समान श्वेतवर्ण पथ खगोल के उत्तर ध्रुव के समीप से आरंभ करके सम्पूर्ण खगोल के चतुर्दिक मंडलाकार बना हुआ है। यही विष्णु का क्षीरसागर है।

विष्णु अनन्त शेषनाग पर शयन करते हैं। खगोल के उत्तर ध्रुव को घेर कर पाश्चात्य ड्राको नामक मंडल है। यह ध्रुव के लगभग चारों ओर है अतः मंडल का कोई न कोई भाग सदा क्षितिज के ऊपर रहता है। अतएव यह अनन्त है। ड्राको शब्द का अर्थ भी विशाल सर्प होता है। यही विष्णु का आधार शेषनाग है। ध्रुव के अत्यन्त समीप लघुऋक्ष 'उरसा माइनर' वा भारतीय शिशुमार तारामंडल है। ध्रुव तारा शिशुमार के ही पुच्छ में है। शिशुमार जलजन्तु-विशेष वरुण के वाहन मकर के समान है। यही विष्णु का मकराकृत कुंडल है। शिशुमार-चक्र का वर्णन विष्णुपुराण में इस प्रकार है—

(१) य० सं० २।६ (२) ऋ० सं० १०।७२ (३) ऋ० सं० १०।५६।५, ६ (४) वि० पु० १।११

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृति प्रभोः । दिविरूपं हरेर्यन्तु तस्य पुच्छेस्थितो ध्रुवः ।--(२।९) । आकाश में भगवान विष्णु का जो शिशुमार के समान आकार-वाला तारामय स्वरूप देखा जाता है उसके पुच्छ भाग में ध्रुव है ।

श्रीमद्भागवत में शिशुमार तथा शेषनाग वा अनन्त नामक तारामंडलों का निम्नलिखित वर्णन है—'योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णा के द्वारा जब ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान करता है तब पहिले आकाशमार्ग से वैश्वानर अग्नि से होकर जाता है जहाँ उसके बचे-खुचे मल भी जल जाते हैं । इसके पश्चात वह वहाँ से ऊपर भगवान श्रीहरि के शिशुमार नामक ज्योतिर्मय चक्र पर पहुँचता है । भगवान विष्णु का यह शिशुमार-चक्र विश्वब्रह्माण्ड के भ्रमण का केन्द्र है । उसका अतिक्रमण करके अत्यन्त सूक्षम एवं निर्मल शरीर से अकेला ही महर्लोक में जाता है । जब प्रलय का समय आता है तब नीचे के लोकों को शेष के मुख से निकली हुई अग्नि में भस्म होते देखकर ब्रह्मलोक में चला जाता है ।'[१]

भागवत में ही अन्यत्र ध्रुव को प्रजापति शिशुमार की पुत्री भ्रमी का पति बताया गया है । शिशुमार तारामंडल में ही ध्रुव तारा है तथा यह नक्षत्रिय खगोल के चतुर्दिक भ्रमण करता हुआ दिवस, वत्सर, कल्प आदि काल विभाग उत्पन्न करता है । भागवत में ध्रुव के पुत्रों के नाम कल्प तथा वत्सर बताये गये हैं ।[२] दिव्य विमान पर बठकर ध्रुव त्रिलोकी को पार कर सप्तर्षि-मंडल से भी ऊपर भगवान विष्णु के परमधाम में पहुँचे । इस प्रकार उन्होंने अविचल गति प्राप्त की ।[३] जिस प्रकार कोल्हू के चारों ओर बैल घूमते हैं वैसे ही यह ज्योतिश्चक्र ध्रुव के चतुर्दिक घूमता है ।[४]

शिशुमार-चक्र अथवा पाश्चात्य 'उरसा माइनर' तारामंडल में ही जो ध्रुव से कम प्रकाश के दो तारे 'बीटा' तथा 'गामा उरसा माइनरिस' हैं वे भारतीय ज्योतिष में जय तथा विजय के नाम से विख्यात हैं । सहस्रों वर्ष पूर्व खगोल का उत्तर ध्रुव इनके ही समीप था । अब भी यह ध्रुव के निकट ही हैं । भागवत में कही हुई कथा के अनुसार यही दोनों सनकादि मुनियों के शाप से हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु दैत्य हुए । हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु दोनों ही स्पष्टतः सूर्य के ही नाम हैं जो पीछे चलकर सूर्य की आसुरीवृत्ति के द्योतक हुए । परन्तु उत्तर आकाश में ही एक मंडल है जिसका पाश्चात्य नाम 'काश्य-पीय'[५] है । हिरण्याक्ष कश्यप प्रजापति के ही पुत्र थे । हिरण्याक्ष का वध

(१) भागवत २।२।२४–२६ (२) भागवत ४।१०।१ (३) भागवत ४।१२।३५ (४) भागवत ४।१२।३६ (५) Cassiopeia

वराहरूपी विष्णु ने किया था। उत्तर आकाश में वराहाकार परशु[१] मंडल काश्य-पीय के समीप ही है। यह सभी मंडल तथा भारतीय ज्योतिष का ब्रह्मा-मंडल[२] भी क्षीरसागर 'रजत पथ' के समीप ही है। सृष्टि के आरंभ तथा वृद्धि की पौराणिक कथाओं का उत्तर आकाश के तारामंडल तथा रजत पथ के परस्पर स्थान से बड़ा ही घना सम्बन्ध जान पड़ता है।

विष्णु ने भागवत के अनुसार हिरण्यकशिपु का वध करने के हेतु सिंह का रूप धारण किया था। ब्राह्मणों में विष्णु को 'नरसिंह' अर्थात् मनुष्यों में सिंह कहा गया है। ऋग्वेद में अग्नि को भी सिंह के समान गरजनेवाला कहा गया है। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद कदाचित ईरान के पुण्यात्मा शासक 'परधात' अथवा 'पेशदात' थे। इनका पूरा नाम हाओश्यांग परधात था। यह 'फ़वाक' के पुत्र तथा 'स्याकमाक' के पौत्र थे। इनके नाम 'हाओश्यांग' का अर्थ होता है 'पुण्यात्माओं के राजा'। इन्होंने पूजा-अर्चा से ईश्वर को प्रसन्न कर लिया था। 'अर्द्वी सुरा अनाहिता' अर्थात् जलधाराओं की देवी उनके बस में थी। अहुर मज़दा अर्थात् वरुण के 'देवों' को परधात के प्रताप का बड़ा भय था।[३]

चतुर्भुज विष्णु का वाहन गरुड़ पक्षी है। ऋग्वेद[४] में सूर्य को सुपर्ण अर्थात् सुन्दर पंखोंवाला तथा गरुत्मान अर्थात् वेगवान किंवा वंदना से बढ़नेवाला कहा गया है। सूर्य, इन्द्र तथा विष्णु तीनों को ही स्थान-स्थान पर 'श्येन' अर्थात् बाज़ पक्षी के समान आकाशचारी कहा गया है। सुमेर में गरुड़ के समान आकाशचारी जू पक्षी की पूजा होती थी। गरुड़ जैसे वेदों को लेकर उड़ गये थे वैसे ही जू पक्षी सुमेर के 'सृष्टि के प्रस्तर-लेख' (टैबलेट्स आफ क्रिएशन) को लकर उड़ गया था। महाभारत की कथा के अनुसार एक बार इन्द्र तथा गरुड़ में युद्ध हुआ था। सुमेर में भी तड़ित् के देवता 'रम्मन' ने 'जू' से युद्ध किया था। डौनाल्ड मैकेन्जी[५] के अनुसार जू पक्षी अरब की मरुभमि से आनेवाला झंझावत है तथा रम्मन वृष्टि के देवता हैं। बैबीलोन में हयशिरा[६] तारामंडल अथवा वृषिराशि को जू पक्षी मानते थे। परन्तु अरब में पाश्चात्य सिग्नस अर्थात् हंस तारामंडल को ही जू पक्षी अथवा रुख पक्षी का रूप मानते थे।[७] सिग्नस मंडल उत्तर आकाश में आकाशगंगा के समीप है तथा संभवतः यही विष्णु के वाहन गरुड़ का रूप माना गया। पवित्र वैष्णव नक्षत्र अभिजित् इसी तारा-

---

(१) Persens (२) Auriga (३) Mythology of All Races–Iran. Page 299–300 (४) ऋ० सं० १।१६४।४६ (५) Myths of Babylonia and Assyria. P. 74–75 (६) Pegarus (७) R. H. Allen-LStar Nawas

मंडल में है । वाल्मीकिय रामायण में वर्णित अश्वमेधयज्ञ में यज्ञ की वेदी के समीप गरुड़ पक्षी की मूर्ति का बनना आवश्यक था ।[१]

ऋग्वेद में अग्नि इत्यादि सभी देवता रा अथवा राधस् किंवा रेवत् रूपी धन-धान्य के स्रष्टा हैं । पुराणों में धनधान्य की देवी लक्ष्मी विष्णु की स्त्री मानी गयी । बाली द्वीप में 'देवीश्री' को धान के खेत की देवी मानकर पूजा जाता है ।[२] अदिति तथा देवी दुर्गा के वर्णन में संसार की अनेक मातृदेवियों का वर्णन किया जा चुका है। अग्नि तथा सूर्य यजुर्वेद में रुक्म अर्थात् रुचिकर 'श्री' को प्रकाशित करनेवाले अथवा दिखलानेवाले कहे गये हैं । 'दृशानो रुक्म उर्व्याव्यद्यौत् दुर्षमायु: श्रिये रुचानः । अग्नि रमृतो अभवद्वयो भिर्यदेवं द्यौरजनयत्सुरेताः । नक्तोषासा समनसा विरूपे धपयेते शिशुमेकं समीची द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः'--(यजुर्वेद १२।१) । दर्शनीय अग्नि उर्वरा भूमि की रुचिकर 'श्री' को प्रकाशित करता है। अग्नि ही आकाश को सुन्दर जलवाला बनाकर हमारे लिए रुचिकर सुन्दर 'श्री' अन्न उत्पन्न करता है । बालरवि रुचिकर शस्य को सुन्दर प्रकाश से प्रकाशित करता है । वही बालरवि अग्नि को धारण करनेवाला है । कृष्णपत्नी रुक्मिणी तथा कृष्ण की राधा एवं श्री सभी विष्णु की विभूति प्रकृति के ही नाम हैं ।

लक्ष्मी समुद्र से उत्पन्न हुई थी । प्राचीन सुमेर में लोग नदी द्वारा लायी गयी मिट्टी से स्थल की उत्पत्ति देखकर जल अथवा समुद्र से ही पृथ्वी की उत्पत्ति मानते थे ।[३] यजुर्वेद में पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी की वन्दना इस प्रकार है--'ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा मा त्वां समुद्र उद् बधीन्मा सुपर्णो अव्ययमाना पृथ्वीं दृह । प्रजापतिष्ट्ठ्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि'--(य० वे० १३।१६-१७) । हे निष्कम्पा ध्रुवा, धारण करनेवाली धरुणा, विश्वकर्मा द्वारा आस्तृता अर्थात् अलंकृता, समुद्र तुम्हें कष्ट न देवे तथा 'सुपर्ण' सूर्य तुम्हें व्यथा न पहुँचाये । हे देवी ! इस पृथ्वी को शस्यपूर्ण बना । प्रजापति, जल के प्राप्तिस्थान समुद्र के पृष्ठ पर तुम्हें स्थिर रूप से रखे । तुम व्यचस्वती अर्थात् अनेक वचनों अथवा अनेक प्रकार के शब्दोंवाली हो । तुम प्रथस्वती अर्थात् दूर तक फैले हुए यशवाली हो । तुम्हारे-यश का विस्तार हो । यह विस्तृत पृथ्वी तुम्हीं हो ।

'भूरसि भूमिरसि अदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं

(१) वा० रामायण १।१४।२६ (२) Bali–W. Van Hoeve, The Hague, Netherlands–P.27 (३) Early Astronomy and Cosmology--P. 24

यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीमाहिंसीः'––(य० वे० १३।१८) । तुम भूलोक हो, भूमि हो, अदिति हो, विश्व का पालन करनेवाली हो, भुवन विश्व को धारण करने वाली हो । पृथ्वी को ग्रहण करो, पृथ्वी को शस्यपूर्णा बनाओ । पृथ्वी की हिंसा न करो । चतुर्भुज विष्णु अर्थात् यज्ञ, भूमि का स्वामी है । यह शस्य-श्यामला पृथ्वी ही विष्णु की स्त्री लक्ष्मी है ।

——:०:——

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा प्रजापति तथा उनका वंश

ऋग्वेद में यों तो ब्रह्मन् का अर्थ वेदमन्त्र है परन्तु दशम मंडल में विश्वकर्मा, प्रजापति तथा ब्रह्मन् नाम के देवताओं की वन्दना इस प्रकार की गयी है—

विश्वकर्मा ने होता बनकर विश्व के भुवनों का आवाहन किया। विश्वकर्मा के पिता कोई नहीं थे अर्थात् वह स्वयंभू थे। उन्होंने ही स्वस्तिवाचन के साथ सर्वप्रथम अग्नि को उत्पन्न किया।

पृथ्वी तथा आकाश की सृष्टि किस आधार पर हुई तथा किस वस्तु से हुई ? किस वस्तु से विश्वकर्मा ने भूमि को उत्पन्न किया तथा आकाश को विस्तृत किया ? विश्वचक्षु, विश्वमुख तथा विश्वबाहु देव वही एक है जो बाहुओं से आकाश की गति नियमित करता है तथा अपने गमनशील पाँवों से पृथ्वी को नियमबद्ध करता है।

कौन वह वन है तथा उसमें कौन ऐसा वृक्ष है जिसकी लकड़ी से आकाश तथा पृथ्वी-रूपी प्रासाद का निर्माण हुआ। हे जिज्ञासु मनीषियों! ब्रह्म ही वह वन तथा वृक्ष है तथा उसी से सृष्टि का निर्माण हुआ।

हे विश्वकर्मा! तुम्हारे ये तीनों उत्तम, मध्यम तथा अधम धाम हैं। हमें सत्पथ की शिक्षा दो। स्वयं अपने यज्ञ से इन लोकों की वृद्धि करो। हे विश्व-कर्मा! तुम हवि द्वारा वर्धमान हो। द्यावापृथिवी तुम्हारे कारण ही पूजनीय है। तुम विश्वशंभू अर्थात् विश्व के कल्याणकारी तथा साधुकर्मा अर्थात् अच्छे कर्म करनेवाले हो—(मंडल १० सूक्त ८१ विश्वकर्मा)

इन्द्रियों के पिता विश्वकर्मा ने मनन किया। उनके मनन करने से ही घृत अर्थात् जल हुआ। जल में ही आकाश तथा पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। विविध कर्मवाले, सर्वव्यापी, महान, धाता, विधाता, सर्वद्रष्टा, सप्तर्षियों से भी परे, एकमात्र देवता वे ही हैं। वे ही हमारे पालन करनेवाले तथा हमें उत्पन्न करनेवाले हैं। वे ही विधाता देवताओं के निवासस्थानों को जाननेवाले हैं। वे भिन्न-भिन्न नाम धारण करके भिन्न-भिन्न देवताओं का कार्य करते हैं। उसी प्रश्न देव, कः देव, अथवा अज्ञात देव में यह सारी सृष्टि विलीन हो जाती है। ऋषिगण विश्वकर्मा के लिए ही यज्ञ करते हैं अथवा तारे उसी विश्वकर्मा के आदर में चमकते हैं (ऋक्ष-तारा-ऋषि)। चल तथा अचल जगत में एक उसी की विभूति फैली हुई है। यह ईश्वरतत्व आकाश से परे, पृथ्वी से परे, देवों से परे तथा असुरों से भी परे है। सर्वप्रथम जल में गर्भ की भांति इसी ने समस्त सृष्टि को धारण किया था। इस गर्भ में इन्द्रादि देवताओं ने सर्वप्रथम एक दूसरे को देखा था अर्थात् इसी मूलतत्व में भिन्न-भिन्न देवताओं का पृथक व्यक्तित्व छिपा था। इस गर्भ में सर्वप्रथम केवल जल था। उसी जल में सारी सृष्टि छिपी थी। उस जल में ही ब्रह्म का निवास था। उसकी नाभि अर्थात् मध्यभाग में ही अण्डे के समान यह द्यावापृथ्वी उत्पन्न हुई जिसमें क्रमशः देवता आदि उत्पन्न हुए। इस द्यावा-पृथ्वी में ब्रह्म का अस्तित्व स्पष्ट नहीं दिखाई देता जैसे यह कुहासे से ढका हो। वास्तव में यही विश्वकर्मा एक ईश्वर है।—(मंडल १० सूक्त ८२)

आरंभ में केवल हिरण्यगर्भ थे जो सभी भूतों के पतिरूप से उत्पन्न हुए थे। उन्होंने पृथ्वी तथा आकाश को स्थिर करके धारण किया। हम किस देवता अथवा कः नामधारी अनिवर्चनीय प्रजापति के लिए हवि प्रदान करें।

जो प्राण तथा बल के देनेवाले हैं। जिनका संसार है। जिनकी आज्ञा को सभी देवता मानते हैं। जिनकी छाया मृत्यु है तथा जिनकी ज्योति अमरत्व है। हम कः देवता के लिए हवि प्रदान करें।

जो अपनी महिमा से जीव तथा निर्जीव जगत के एकमात्र स्वामी हैं। जो द्विपद तथा चतुष्पद दोनों के ही स्वामी हैं। हम उन्हीं कः देवता के लिए हवि प्रदान करें। —(मंडल १० सूक्त १२१ कः देव प्रजापति)

उसकी महिमा के अधीन ही यह हिमवान पर्वत है। यह जलपूर्ण समुद्र उसी का है। जिसकी ये चारो दिशाएँ बाहू हैं तथा जिसकी चारो प्रदिशाएं भी हैं, हम उसी कः देव के लिए हवि प्रदान करें।

जिसके द्वारा यह उग्र आकाश तथा पृथ्वी भी अपने-अपने स्थान पर दृढ़ हैं। जो स्वर्लोक तथा सूर्य का आधार है। जो अन्तरिक्ष से बड़ा है। हम उसी कः देव के लिए हवि प्रदान करें।

जिसके भय से क्रन्दसी अर्थात् द्यावापृथ्वी अथवा आकाश तथा पृथिवी मन ही मन कांपते हैं, जब उनके ऊपर सूर्य का प्रकाश पड़ता है। हम उसी कः देव के लिए हवि प्रदान करें।

जब वृहती जलराशि के गर्भ से अग्नि उत्पन्न हुई तब वही देवताओं का प्राण हुआ। हम उसी कः देव के लिए हवि प्रदान करें।

जिसने अपनी महिमा से उस अपार जलराशि को देखा। उस जलराशि में दक्ष अर्थात् उत्पादन-सामर्थ्य था। उसी जलराशि से यज्ञ उत्पन्न हुआ। जो देवताओं का अधिदेव है। हम उसी कः देव के लिए हवि प्रदान करें।

पृथ्वी का जनक वह हमारी हिंसा न करे। जिस सत्यधर्मा ने आकाश को भी उत्पन्न किया। जिसने वृहती तथा चन्द्रा अर्थात् स्वच्छ जलराशि को उत्पन्न किया हम उसी कः देव के लिए हवि अर्पण करें।

हे प्रजापति, तू ही एक इस समस्त सृष्टि को जानता है। हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर तू हमारी कामना पूरी कर। हम धनों के पति हों।

उस समय न सत् (होना) था न असत्। न अन्तरिक्ष था न उसके परे आकाश। किसने सब को ढाँका था? और कहाँ? और किसके द्वारा रक्षित क्या वहाँ पानी अथाह था? तब न मृत्यु थी न अमरत्व। रात और दिन में वहाँ भेद न था। वहां एक एकाकी स्वावलंबी शक्ति से श्वसित था। उसके अतिरिक्त उसके ऊपर कोई न था। अंधकार वहां अंधेरे में छिपा था। विश्व केवल भेदशून्य जल था। वह जो शून्य में छिपा बैठा है वही एक अपनी शक्ति से विकसित था। तब सबसे पहिली बार कामना उत्पन्न हुई जो अपने भीतरी मन की प्रारंभिक बीजशक्ति थी। ऋषियों ने अपने हृदय में खोजते हुए असत् में सत् के योजक सम्बन्ध को खोज पाया। मध्यस्थित इस बीजशक्ति ने ही फिर ऊपर-नीचे आगे-पीछे तथा भोग्य एवं भोक्ता के भेद उत्पन्न किये। यह कौन जानता है तथा कौन कह सकता है कि यह सृष्टि किस कारण हुई। कौन जानता है कि इस सृष्टि में देवता किस प्रकार हुए। वह मूल स्रोत जिससे यह विश्व उत्पन्न हुआ ....उसे वही जानता है जो उच्चतम द्यौलोक से शासन करता है, जो सर्वदर्शी स्वामी है। (मंडल १० सूक्त १२९)

ऋग्वेद के इन्हीं मन्त्रों से ब्राह्मणों के ब्रह्मा तथा प्रजापति का आरंभ हुआ। हिरण्यगर्भ प्रजापति सृष्टि के आरंभ के अण्डाकार सृष्टि के सारभूत गर्भ थे। चीनी दार्शनिकों ने सृष्टि का आरंभ एक तेजोमय अण्डे से माना जिससे 'पानुक' अथवा 'कु' देवता उत्पन्न हुए। उन्होंने अपनी बलि देकर ही सारी सृष्टि उत्पन्न की।[१] मिस्री दार्शनिकों के अनुसार आरंभ में केवल नियमहीनता का अण्डा (Chaos Egg) था जिससे 'रा' देवता ने नियमबद्ध सृष्टि रची। मिस्र में अतिप्राचीन-काल में 'क', 'खु' तथा 'खट' नाम से मन, आत्मा तथा शरीर-रूपी त्रिदेवा की पूजा होती थी। मिस्र के राजर्षि चतुर्थ आमेनहोतेप अथवा आखेनातन ने अपना एक 'अतन' (Aton) धर्म चलाया जिसमें अतन देवता को संसार के स्रष्टा, गर्भ वा अण्डे का रूप दिया गया।[२] ऋग्वेद में भी प्रजापति विशेषरूप से गर्भ के देवता हैं। 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते'–(ऋ० सं० १०।१८४।१)। विष्णु योनि बनाते हैं, त्वष्टा उसमें अवयवों की रचना करते हैं, प्रजापति उसे अपने वीर्य से सिंचन करते हैं तथा धाता गर्भ का धारण करते हैं।

परब्रह्म प्रजापति का यथार्थ भौतिक रूप ज्ञात न होने के कारण यह कः देव अर्थात् 'कौन देवता' कहलाये। उपर्युक्त हिरण्यगर्भ-सूक्त में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' के दोनों अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ—हम किस देवता के लिए हवि अर्पण करें। दूसरा अर्थ—हम कः देव अर्थात् प्रजापति के लिए हवि अर्पण करें। यजुर्वेद-काल तक कदाचित कः का अर्थ 'कौन' ही समझा जाता था। यजुर्वेद में प्रजापति को सम्बोधित करके कहा गया है—'कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि कोनामासि।'[३] तू कौन है, कितना है, किसका है, तेरा क्या नाम है? कदाचित यजुर्वेद का निम्नलिखित मन्त्र भी विश्वस्वरूप प्रजापति को ही सम्बोधित है— 'द्यौस्ते पृष्ठम् पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्ष समुद्रो योनिः।'[४] आकाश तेरी पीठ है, पृथिवी खड़े होने का स्थान है, अन्तरिक्ष आत्मा है तथा समुद्र अर्थात् दिग्देश कालरूपी विस्तार ही तेरी योनि अथवा उत्पन्न होने का स्थान है। यजुर्वेद में प्रजापति को मनु अर्थात् मननशील तथा विश्वकर्मा भी कहा गया है।[५]

ब्राह्मणों में संवत्सर अथवा यज्ञ को प्रजापति कहा गया है। यजुर्वेद ७।१८ में तथा तैत्तिरीयब्राह्मण १।१।१ में प्रजापति को 'मन्थी मन्थिशोचिषा' अर्थात् सूर्य के प्रकाश से संसार को नियमित करनेवाला कहा गया है। प्रजापति ने

---

(१) Myths of China and Japan. P. 260 (२) Egyption Myth and Legend. P. 73, 74, 87, 233 (३) वा० सं० ७।२६ (४-५) वा०सं० ११।६६, १२ ६१

सर्वप्रथम कृत्तिका नक्षत्र में अग्नि को धारण किया ।[१] कृत्तिका वैदिक काल का प्रथम नक्षत्र है अर्थात् इसी स्थान पर वसन्त समाप्त होने के कारण नक्षत्रों की गणना यहीं से आरंभ होती थी । अब अयनचलन के कारण वसंत सम्पात शतभिषक् नक्षत्र के समीप चला गया है । तैत्तिरीयब्राह्मण के अनुसार जो कृत्तिका की पूजा नहीं करते हैं उनके लिए अग्नि गृहों का दाहक होता है ।

पुनः प्रजापति ने रोहिणी नक्षत्र में अग्नि का सृजन किया । उससे देवताओं ने रोहिण्य अर्थात् मनोवांछित बलि पायी । यही रोहिणी का रोहिणित्व है जो रोहिणी में अग्नि धारण करता है अर्थात् अग्नि जलाकर उसमें हवि प्रदान करता है, वह अपनी सभी मनोवांछित कामनाएँ प्राप्त करता है ।[२]

अंगरेजी-पुस्तक 'अर्ली ऐस्ट्रोनोमी एण्ड कौस्मोलौजी' के लेखक श्री मेनन के अनुसार भारत ही नहीं सभी प्राचीन देशों में वर्ष के आरंभ में तथा वर्ष के अन्तर्गत प्रत्येक ऋतु आदि में यज्ञ होते थे जिनमें पशुओं की बलि चढ़ायी जाती थी । यह उस प्रजापति की पूजा थी जिसने सभी पशुओं को रचा था ।[३] संवत्सर ही प्रजापति था तथा यज्ञ का 'मन्थी' अथवा स्वयं यज्ञ भी था । कालरूपी संवत्सर ही बीज से शस्य तथा वृक्ष एवं वीर्य से पशुओं को बनानेवाला था । यह सब 'समय' अथवा काल से ही उत्पन्न होते हैं ।

यजुर्वेद में बलि-योग्य पशुओं की अनेक सूचियाँ दी हुई हैं । एक सूची निम्नलिखित प्रकार की है—शूकर, मृग, वृष, सिंह, वानर, लवा, सर्प, शश, ग्राह, हस्ती तथा मूषिक ।[४] राशिचक्र के भाग भी मेष, वृष, कर्क, सिंह, इत्यादि पशुओं के नाम से ही जाने जाते हैं । संवत्सर के प्रतिरूप राशिचक्र के पाश्चात्य नाम 'जोडिआक' का अर्थ कदाचित पशुपति अथवा प्रजापति ही है क्योंकि ग्रीक शब्द 'ज्वौन' का अर्थ पशु होता है । ब्राह्मणों में प्रत्येक राशि नहीं प्रत्येक नक्षत्र में करने के यज्ञों के वर्णन हैं । प्राचीनकाल के यज्ञों में पशुओं की बलि होती थी । परन्तु यजुर्वेद में ही पशुओं के स्थान पर उनके 'चित्रों' की बलि की विधि भी दी हुई है । प्रजापति को इसी प्रकार 'प्रजा' का रचनेवाला मानकर पूजा जाता था । प्रजापति द्वारा बनाये पशु आदि बलि द्वारा उसी को अर्पित किये जाते थे ।

संसार में स्त्रीपुरुष के संयोग से प्रजा की उत्पत्तिको देखकर प्रजापति की पुत्री तथा स्त्री शतरूपा की कल्पना की गयी । प्रजापति के पहिले कुछ भी नहीं था । केवल संवत्सर-रूप प्रजापति था । उसने अपनी संगिनी की रचना की ।

---

(१) तै० ब्रा० १।१।२ (२) तै० ब्रा० १।१।२ (३) Early Astronomy and Cosmology. P. 52 (४) वा० सं० ५।५, ११, ४६, ६।६, ४, १७

उसके द्वारा रचे जाने के कारण वह उसकी पुत्री थी । परन्तु प्रजा के सृजन के हेतु प्रजापति ने उसे अपनी स्त्री बनाना चाहा । शतरूपा ने उससे बचने के लिए मृगी, गो, आदि अनेक रूप धारण किये । प्रजापति भी मृग, वृषभ आदि का रूप धारण कर शतरूपा से सृष्टि उत्पन्न करता गया ।[१] शतरूपा काली का भी नाम है तथा पहले बताया जा चुका है, काली पृथ्वी है । द्यौष्पितर, द्यावा-पृथ्वी आदि वैदिक शब्दों में आकाश के पिता तथा पृथ्वी अथवा द्यावापृथ्वी की माता होने का वर्णन मिलता है । कालरूप प्रजापति संवत्सर ने द्यावापृथ्वी-रूपिणी शतरूपा में सृष्टि उत्पन्न की । काल अथवा दिग्देशकाल-रूपी सूक्ष्म प्रजापति हैं तथा विश्व के स्थूल तत्व ही शतरूपा माता हैं ।

यजुर्वेद तथा ब्राह्मणों में प्रजापति ही आदिस्रष्टा हैं परन्तु महाकाव्य तथा पुराणों में ब्रह्मा सृष्टि के देवता हो गये थे तथा उन्होंने अनेक प्रजापति बनाये जिन्होंने प्रजा रची ।[२] ऋग्वेद में एकादश रुद्र, रुद्र के ही संतान थे । मिस्र के महादेव 'असरआ' के पुत्र 'होरस' अपने पिता के ही अवतार थे तथा वह अपनी माता के पति बने । प्रत्येक संवत्सर अपने पूर्व के संवत्सर का पुत्र होता है परन्तु अपनी माता वा पुत्री द्यावापृथिवी का पति भी होता है। यजुर्वेद में ही संवत्सर के संवत्सर, परिवत्सर, आदि पांच नाम हैं । वेदों में धाता, विधाता, आदि ब्रह्मा के नाम एवं दक्ष आदि आदित्यों तथा प्रजापतियों के नाम कई स्थानों पर आये हैं । यह अनेक प्रजापति वा आदित्य परस्पर पिता-पुत्र होकर भी एक ही थे । प्रजापतियों की स्त्रियां वा कन्याएं प्रसूति, आकूति, ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति आदि[३] स्पष्ट ही विश्व के विभिन्न गुणों की मूर्तियाँ हैं ।

संवत्सर ही सृष्टि का रचयिता है । संवत्सर के विभागों की गणना यज्ञों द्वारा रखी जाती है । अतः यज्ञ भी प्रजापति है । चतुष्कोण यज्ञवेदी ही चतुर्भुज विष्णु तथा चतुरानन ब्रह्मा है । पुनः संवत्सर अथवा काल ही सृष्टि को नियमित करनेवाला यम, सभी चर-अचर प्रकृति को निज धर्म में संलग्न करनेवाला धर्म तथा सभी का क्षय करनेवाला मृत्यु है ।

----:o:----

(१) बृ० उपनिषद् (२) विष्णुपुराण १।७ (३) विष्णुपुराण १।७

तेरहवाँ अध्याय

अश्विनीकुमार, गन्धर्व तथा अप्सरा

वैदिक देवताओं में अश्विनीकुमारों का भौतिक अर्थ निश्चित करना सब से कठिन है। एडिनबरा विश्वविद्यालय के संस्कृत अध्यापक श्री कीथ ने ऋग्वेदोक्त अश्विनीकुमार-सम्बन्धी सूक्तों का सारांश इस प्रकार दिया है।[१] अश्विन नासत्य अर्थात् अनिवर्चनीय तथा दस्र अर्थात् आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले हैं। वे सुन्दर हैं, बलिष्ट हैं, रक्तवर्ण अथवा रजतवर्ण हैं तथा उनका पथ रक्तवर्ण वा सुवर्ण है। उनके पास मधु का पात्र है। तथा वे यज्ञ एवं यजमान को अपने मधु के थैले से स्पर्श करते हैं। उनका रथ मधुमान है तथा उस रथ में तीन पहिये हैं, तीन बैठने के स्थान तथा अन्य सब कुछ भी तीन-तीन हैं। अश्विनों का प्रादुर्भाव उषाकाल में होता है। वह उषा के पीछे-पीछे अपने रथ में जाते हैं। जब उनका रथ चलता है तभी उषा का जन्म होता है। फिर भी वह केवल उषाकाल नहीं, मध्याह्नकाल तथा संध्या को भी यज्ञ में आते हैं। वह आकाश तथा समुद्र की विवस्वन्त तथा सरण्यु की अथवा पूषा देवता की सन्तान हैं। वह दोनों साथ रहते हैं जैसे एक शरीर के दो हाथ अथवा चक्षु, पर वे अलग-अलग भी उत्पन्न होते हैं। उन दोनों का विवाह सूर्य की कन्या सूर्या से हुआ जिसके लिए उनके रथ में तीसरा स्थान है। वे अतिशय चमत्कारिक वैद्य हैं। उन्होंने अतिवृद्ध च्यवन को पुनः युवा बनाया।

अश्विनों का भारतीय भाष्यकारों ने अनेक प्रकार का अर्थ लगाया। और्णवाभ के मत से अश्विन दो अश्वारोही राजकुमार थे जिन्होंने प्राचीनकाल में अनेक पराक्रम किये थे।[२] ऋग्वेद के मन्त्रों में अश्विनों ने तुग्र के सुत भुज्य को समुद्र में डुबने से बचाया, अत्रि को दस्युओं द्वारा जलाये जाने से बचाया, रेभ को

(१) Mythology of All Races-Indian. P. 30 (२) निरुक्तम् १२।१।१

मृत्यु से बचाया । उन्होंने न केवल च्यवन को यौवन-दान दिया वरन उन्होंने ऋज्राश्व की भी दृष्टि लौटायी तथा विश्पला को उसके कटे पाँव के स्थान पर लोहे का पाँव दिया ।[१] इन वर्णनों से तो अश्विनीकुमार पराक्रमी तथा वैद्यक-शास्त्र जाननेवाले दो भाइयों-जैसे लगते हैं जो सम्भवतः किसी राजा के दो पुत्र रहे हों । अश्विनीकुमार आरम्भ में देवता न थे । इसकी पुष्टि महाभारत की उस कथा से होती है जिसमें अश्विनीकुमारों ने सोमयज्ञ में भाग पाने का वर माँग कर ही च्यवन ऋषि की दृष्टि तथा उनकी युवावस्था उन्हें लौटायी थी ।[२] मोक्ष-मूलर के अनुसार च्यवन अस्त होते हुए सूर्य हैं जिनका अश्विन जीर्णोद्धार करते हैं ।[३]

फिर भी ऋग्वेद में ही अनेक ऐसे वर्णन हैं जिनसे अश्विनीकुमारों का कोई आकाशिक विभूति होना भी युक्तिसंगत जान पड़ता है । 'अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुँचतं वृकस्य'[४] इस मन्त्र का अर्थ निरुक्तकार ने इस प्रकार लगाया है—वर्तिका अर्थात् वर्तनशीला उषा युवा अश्विनों को वृक अर्थात् रात्रि के अन्धकार अथवा उषा के विनाशकारी सूर्य से बचाने के लिए पुकारती है ।

अश्विनों के वैद्यक-सामर्थ्य की प्रशंसा अनेक स्थानों पर है । इन्हें विशेषतः कुष्टरोग तथा क्षयरोग का निवारक तथा दृष्टि एवं श्रवणशक्ति को लौटानेवाला कहा गया है ।[५] 'यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा । अभि-दस्युँ बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथरार्याय ।' इस मन्त्र का अर्थ निरुक्तकार ने इस प्रकार किया है—'हे अश्विन ! जिस प्रकार वृक अर्थात् हल से यव के बीज बोये जाते हैं उसी प्रकार बकुर सूर्य से जल बरसा कर तुम मनुष्यों के लिए अन्न का दोहन करते हो । हे दस्युओं को मारनेवाले ! तुमने 'आर्य' के लिए 'उ ' अर्थात् विस्तीर्ण वा विशाल ज्योति अर्थात् चक्षु बनाये ।' दस्यु आर्यो के मानुषी शत्रु ही थे । बकुर सूर्य ही नहीं वृक अर्थात् हल का भी विशेषण हो सकता है । अश्विनीकुमार सम्भवतः कृषिविद्या में पारंगत दस्युओं के हन्ता वीर राजकुमार थे जिन्होंने आर्य की ज्योति अर्थात् आर्यों के राज्य का विस्तार किया । मिस्र तथा चीन के अनेक राजा शस्त्रविद्या, कृषिविद्या, वैद्यक तथा ठठेरा, कुम्हार इत्यादि के कार्य में पारंगत थे । ऋग्वेद में अन्यत्र[६] अश्विनों को 'हिम' से 'अग्नि' को बनानेवाला अथवा हिम से बचने के लिए अग्नि का बनानेवाला कहा गया है । निरुक्तकार ने अश्विनों को सूर्य तथा चन्द्रमा, रात्रि

---

(१) Mythology of All Races-Indian. P. 31. (२) ऋ० सं० १।११७।१६, निरुक्तम् ५।४।२१ (३) Contributions—589 (४) ऋ० सं० १।११७।८ (५) ऋ० सं० १।११७।२१ (६) ऋ० सं० १।११६।८

तथा दिन अथवा द्यावापृथ्वी भी बताया है परन्तु यह अर्थ निश्चित रूप से वेदमन्त्रों में लागू नहीं हो सकता।

यजुर्वेद-काल तक अश्विनों की गणना भलीभांति से देवताओं में हो चुकी थी। उन्हें सूर्य-देव सविता के दोनों हाथों का प्रतीक कहा गया।[१] ऋग्वेद में वे प्रातःस्मरणीय कहे गये ह। प्रातःकाल के तारे शुक्र तथा बुध ये दोनों ग्रह हैं। परन्तु अश्विनों का यह अर्थ उनके सभी गुणों में लागू नहीं होता। पीछे चलकर तो अन्य देवताओं की भांति अश्विनों के विषय में भी अनेक कथाएँ निकलीं जिनसे इनका यथार्थ स्वरूप समझना और भी कठिन हो गया। अश्विनों के ग्रीक प्रतिरूप कैस्टर तथा पौलक्स मिथुन राशि के दो ताराओं के नाम हो गये।

गन्धर्व तथा अप्सरा देवताओं से भिन्न रहे पर देवताओं से उनका घना सम्बन्ध रहा। ऋक्संहिता १०।१३९ में विश्वावसु गन्धर्व की प्रार्थना है जो सूर्य तथा मेघों से सम्बद्ध मालूम पड़ता है। गन्धर्व जल वा सोम का रक्षक है तथा इन्द्र उसे विदीर्ण करते हैं। गन्धर्व तथा अप्सरा के संयोग के आदि मानव यम तथा यमी की उत्पत्ति हुई। गन्धर्वों के आयुध प्रोज्जल हैं। उनके केश वायु के समान हैं। अथर्ववेद में एवं यजुर्वेदीय तैत्तिरीयसंहिता में सूर्य, चन्द्रमा तथा मेघ तीनों को ही गन्धर्व कहा गया है। 'सूर्योगन्धर्वो तस्य मरिचयोऽप्सरसः। चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसः। पर्जन्यो गन्धर्वस्तस्य विद्युतोऽप्सरसः।'[२] विश्वावसु को भाष्यकारों ने विश्व का धनस्वरूप सूर्य, चन्द्रमा अथवा मेघ बताया है।[३] गन्धर्व को अभ्रिय अर्थात् अन्तरिक्ष का निवासी कहा गया है। २७ अथवा २८ चान्द्र नक्षत्र दक्ष प्रजापति की अप्सरा पुत्रियों के स्वरूप माने गये हैं तथा चन्द्रमा गन्धर्व उनके पति हैं।[४] गो अर्थात् प्रकाश वा जल को धारण करनेवाले सूर्य, चन्द्रमा तथा मेघ ही गन्धर्व हैं।

निरुक्तकार के अनुसार अप्सरा की व्याख्या 'अपस्' अर्थात् जल में 'सरण' करनेवाली स्त्रीरुपिणी शक्ति है। निघंटु भाष्य में 'अपस्' का अर्थ-रूप भी दिया हुआ है। जल में रहनेवाली सुन्दरी स्त्रियों की कल्पना साइरेन, निम्फ वा मरमेड के रूप में पाश्चात्य देशों में भी हुई। जैसा पहले बताया जा चुका है कि 'अपस्' केवल पार्थिव जल न होकर आकाश का भी द्योतक है तथा आकाश तारामण्डल वा ताराविशेष भी 'अपस्' में ही 'सरण' वा 'रमण' करते हैं। बेबीलोन में लुब्धक तारा को इश्तार के नाम से पुकारते थे तथा इश्तार-विषयक

(१) वा० सं० ६।६ (२) तै० सं० ३।४।७।१, २ (३) अ० सं० २।१।१।२, ५, २।१।२।१, ४ (४) तै० सं० २।३।५।१-३; ३।४।७।१

कहानियाँ भारतीय अप्सराओं की ही याद दिलाती हैं। तैत्तरीयसंहिता में चान्द नक्षत्रों को स्पष्ट रूप से अप्सरा कहा गया है। ऋग्वेद में जैसे केवल एक गन्धर्व विश्वावसु का नाम है वैसे ही केवल एक अप्सरा उर्वशी का नाम है। निरुक्तकार के अनुसार उर्वशी आकाशिक नारीशक्ति की कल्पना है जिससे वरुण आदि देवताओं ने वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियों को अर्थात् ऋष अथवा चमकनेवाले ताराओं को उत्पन्न किया। ऋक्संहिता १०।९५ में उर्वशी के साथ पुरुरवा नामक मानुषी राजा का परस्पर संवाद उद्धृत है। उर्वशी ने उसे छोड़ दिया पर स्वर्ग में उसका साथ देने की प्रतिज्ञा की। कई विद्वानों ने उर्वशी को उषा तथा पुरुरवा को सूर्य माना है।[१]

यजुर्वेद में एक स्थान पर अग्नि को उर्वशी तथा पुरुरवा दोनों ही नामों से पुकारा गया है।[२] महर्षि दयानन्द के अनुसार उर्वशी का अर्थ अनेक सुखों का दायक तथा पुरुरवा का अर्थ अनेक रव अर्थात् शास्त्रों का अध्यापक है। पुराणों में दानव केशी द्वारा उर्वशी का अपहरण तथा पुरुरवा से केशी के परास्त होने एवं उर्वशी के उद्धार की कहानी है। जो रावण द्वारा सीता-अपहरण तथा राम-रावण-युद्ध की याद दिलाती है।

---

(१) Mythology of All Races–Indian, P. 60. (२) वा० सं० ५।२

चौदहवाँ अध्याय

रामायण

जर्मन विद्वान् जैकोबी ने अपनी पुस्तक 'डास रामायण' में राम तथा सीता की कथा को भौतिक घटनाओं का रूपक माना है। सीता स्पष्ट ही मनुष्य न होकर कोई दैवी शक्ति है। रामायण में दी हुई कथा के अनुसार सीता की उत्पत्ति राजा जनक के हल से हुई थी। **'अथ मे कृषतः क्षेत्रं लांगलादुत्थिता ततः। क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता'**––(वाल्मीकिय रामायण –१।६६।१३)। ऋग्वेद में खेत में हल द्वारा किये गये चिह्न को सीता कहा गया है तथा लांगल अर्थात् हलफाल तथा हल द्वारा किये गये चिह्न सीता की वन्दना इस प्रकार से की गयी है––

'शुनं वाहाः शनं नरः शुनं कृषतु लांगलम्।' ––(ऋ० सं० ४।५७।४)। ....सुख को लानेवाले इन्द्र तथा वायु सुख की धारा बहायें। कृषक नर सुख उत्पन्न करें। हल से भी सुख की खेती हो। **'अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा। तथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि।'**––(ऋ० सं० ४।५७।६)। हे सुभगे सीते! तू वर्तमान रह। हम तेरी वन्दना करते हैं। तू हमारे लिए सुन्दर धान्य उत्पन्न कर। तुझ से हमें उत्तम फल प्राप्त हों।

'इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानुयच्छतु। सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा-समाम्।'––(ऋ० सं० ४।५७।७)। सीता को साथ लेकर इन्द्र चलें। पूषा देव सीता के पीछे-पीछे चलें अर्थात् इन्द्र द्वारा लाये गये शस्य का ोषण करें अथवा उसकी वृद्धि करें। यह सीता दुधारु गाय की भाँति प्रतिवर्ष हमारे लिए भोजन देनेवाली होवे।

शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं को नाशा अभियन्तु वाहैः। शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।'––(ऋ० सं० ४।५७।८)। हमारे लिए फाल अर्थात् भमि-विदारक काष्ठ भलीभाँति कृषि करे। हल के बैल

हिन्देशियाई द्वीप बाली में सीता तथा कृषि का यह सम्बन्ध अब तक सुरक्षित है। वहाँ जब अनावृष्टि वा अतिवृष्टि से फसल के मारे जाने का भय होता है तब मन्दिरों में जमा होकर लोग 'केटजक' नृत्य का आयोजन करते हैं जिसमें सीताहरण तथा रावण-वध के पश्चात् सीता के उद्धार के दृश्य दिखाये जाते हैं।[१] यों भी, बाली के हिन्दू धर्मावलम्बी लोग समय-समय पर प्रधानतः कृषि की उन्नति के लिए रामलीला के भिन्न-भिन्न अंशों का आयोजन करते रहते हैं।

हल द्वारा बनायी गयी सीता की वेदोक्त तथा सूत्रोक्त वन्दना से रामायण के कई अंशों का स्मरण हो आता है। इन्द्र के साथ आनेवाली तथा पूषा द्वारा अनुकरण की जानेवाली सीता रामायण में राम के साथ आती हैं तथा लक्ष्मण उनका अनुकरण करते हैं। राम तथा लक्ष्मण इन्द्र तथा पूषा की भाँति विष्णु अथवा आदित्य के ही रूप हैं। अरण्य के मध्यभाग में पूजी जानेवाली सीता रामायण में भी अरण्य में जाती है। कौशिक सूत्रोक्त सीता-पूजनविधि में सीता के चतुर्दिक परिधि खीची जाती है तथा रामायण में भी लक्ष्मण सीता के चतुर्दिक अपने धनुष से चिह्न बनाते हैं। कौशिक-सूत्र की सीता 'हिरण्यस्रक्' अर्थात् सोने जैसा अन्न बिखेरनेवाली हैं। रामायण की सीता भी रावण द्वारा हरी जाते समय अपने सोने के गहने बिखेरती जाती हैं। ऋग्वेद की सीता के सहायक 'शुनासीर' अर्थात् इन्द्र तथा वायु अथवा वायु तथा आदित्य हैं। रामायण में सीता के सहायक इन्द्र के समान परमैश्वर्यशाली तथा सूर्य के वंशज राम तथा वायुपुत्र हनुमान हैं। ऋग्वेद की तड़ित् की देवी वाक् ने रुद्र के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ायी थी। सीता ने भी रुद्र के धनुष को सहज ही उठा लिया था। —(ऋक्संहिता १।११।५)। जब 'वल' नामक राक्षस ने गो अर्थात् भोजनोत्पादक कृषि अथवा सीता को अथवा कृषिवर्धक जल को अपनी गुफा में छिपा रखा तब इन्द्र ने अपने पर्वताकार मेघों के साथ जाकर वल से युद्ध किया तथा 'गो' को बन्धनमुक्त किया।

राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सर्वव्यापी विष्णु के ही चार अंश थे।

ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वात्मानम् चतुर्विधम्। पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम्। —(वाल्मीकिय रामायण १।१५।३१)।

मिस्री धर्म में सृष्टि का आरम्भ देवताओं तथा उनकी पत्नियों से हुआ। उनके नाम क्रमशः नु तथा नुट, हेहू तथा हेहुट, केकुई तथा केकुइट एवं केढ़

(१) BALI—Nikola Drakulik & Max Bajetto W. Van Hoeve. Ltd., Bandeong-Indonesia and the Hague-Netherlands. 1951.

तथा केहुट थे । इनमें नुट अन्य वर्णनों में आकाश-रूपी समुद्र की देवी थीं तथा भारतीय अदिति की भाँति सूर्य, चन्द्रमा तथा ताराओं की माता थीं । नु भारतीय वरुण अथवा क्षीरसागर-निवासी विष्णु की भाँति सृष्टि के पूर्व की अपार जल-राशि के देवता थे । इस देवचतुष्टय एवं तत्सम्बन्धी अन्य देवताओं तथा देवियों का भौतिक अर्थ समझ में नहीं आता पर इतना स्पष्ट है कि ये सभी प्रकाश अथवा अन्धकार एवं गति अथवा शान्ति के ही रूप थे । बैबीलोन में भी इन चार आदि-देवताओं तथा इनकी स्त्रियों की पूजा क्रमशः अप्सु-तिआमत, लक्षमु-लक्षाम, अंशार-किशार तथा या-दमकीना के नाम से होती थी । इनमें अप्सु प्रारंभिक प्रलय-जल अप्स के देवता थे तथा तिआमत उस भयंकर जल-राशि की अधिष्ठात्री देवी विकरालरूपिणी चण्डिका थी ।[१]

विष्णु अर्थात् विश्वव्यापी विश्वपोषक सूर्य के इन चार अंशों की तीन माताएँ थीं—कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा । रामायण में इन्हें 'ह्रीश्रीकीर्ति' के तुल्य कहा गया है ।[२] मिस्र में उनके महादेव अथवा विष्णु सरीखे महान देवता 'असरआ' अथवा ओसाइरिस की भी तीन माताएँ आइसिस, नेफ्थिस तथा नुट थीं जो क्रमशः आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी की द्योतक थीं । भारत के महादेव भी इसी प्रकार त्रयम्बक अर्थात् तीन माताओंवाले थे ।

रामलक्ष्मण आदि के पिता राजा दशरथ स्वयं दस दिशाओं में व्याप्त प्रजापति हैं ।

ऋग्वेदीय भावयव्य राजा के पुत्र स्वनय ने कक्षीवान ऋषि को चार घोड़ों वाले दशरथ दान दिये थे ।[३] कदाचित दस रथों के दान की उस समय विशेष महत्ता थी । दस रथों का दान देनेवाले राजा का भी नाम दशरथ हो सकता है ।

जगत्पिता प्रजापति विशेष रूप से गर्भ के रक्षक देवता माने जाते थे । यजुर्वेद में गर्भकाल दस मास का ही कहा गया है ।

एजतु दशमास्यो गर्भोजरायुणा सह ।[४] दश महीने का गर्भ सूर्य के द्वारा अथवा साथ पुष्ट होता है ।

यजुर्वेद में एक स्थान पर दश ही महीने के नाम मिलते हैं तथा पाश्चात्य पंचांग के भी मार्च से लेकर दिसम्बर तक इन दश महीनों के नाम प्राचीन हैं

(१) Myths of Babylon and Assyria. P. 138 (२) वाल्मीकिय रामायण १।१५।२० (३) ऋ० सं० १।१२६।४ (४) य० सं० ८।२८

तथा अनेक विद्वानों के मत से जनवरी तथा फरवरी ये दो महीने पीछे चलकर प्रचलित हुए ।[१] ऋग्वेद में अग्नि को भी रथ, रथी तथा दश के साथ या 'दश' पर आनेवाला अर्थात् दश उँगलियों से मथने पर अरणि से उत्पन्न होनेवाला कहा गया है ।[२] यज्ञरूपी विष्णु का आधार अग्नि है। स्वयं सूर्य दशरथ हैं क्योंकि उनसे किरणें दश दिशाओं में जाती हैं। दश दिशाओं के आधार पर स्थित आकाश के देवता द्यौष्पितर भी 'दशरथ' हैं। संवत्सर, अग्नि, यज्ञ, द्यौष्पितर तथा सूर्य इनमें से कौन रामायण के दशरथ हैं, यह निश्चय करना कठिन है । वास्तव में ये सभी वेदांग दर्शन के अनुसार एक दूसरे के रूप हैं तथा रामायण का वर्णन इनमें से किसी पर भी लागू हो सकता है । ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र तथा मरुद्गणों को रघुष्यद्, रघुपत्म आदि अर्थात् तीव्रगामी कहा गया है । राम भी रघुकुल में उत्पन्न हुए थे ।

सीता, राम तथा दशरथ का वैदिक कृषिदेवी, विष्णु तथा प्रजापति, यज्ञ अथवा अग्नि देव के समान वर्णनों का यह अर्थ नहीं माना जा सकता कि इन नामों के लौकिक अथवा अलौकिक शक्तिवाले स्त्री-पुरुष कभी थे ही नहीं । सम्भव है, इन नामों से प्रतापी व्यक्ति हुए थे जिनमें मनुष्यातीत गुण प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान थे । यह भी सम्भव है कि ऐसे गुणवाले ऐतिहासिक व्यक्तियों को पीछे से ये नाम दे दिये गये । परन्तु इनके विषय में जो कथाएँ हैं वे वेदोक्त भौतिक शक्तियों के वर्णन से मिलती-जुलती हैं तथा कदाचित इन कथाओं का अधिकांश वेदोक्त प्राकृतिक घटनाओं के वर्णनों का रूपक है ।

राम का शत्रु दशानन रावण ब्रह्मा का पुजारी था तथा उन्हीं के वरदान से वह इतना शक्तिशाली हो गया था । अथर्ववेद में दश सिरवाले एक ब्राह्मण का वर्णन है, जिसने सर्वप्रथम सोमरस का पान किया था ।[३]

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः। स सोमं प्रथमः पपौ स चकाराऽरसं विषम् ।

ऋग्वेद में इन्द्र के एक और शत्रु अनेक सिरवाले विश्वरूप भी थे जो देवताओं के पुरोहित होते हुए भी असुरों से मिले हुए थे । सीता को हरनेवाला रावण कृषि अथवा वृष्टि को हरनेवाले वृत्र का ही रूप है । वृत्र अनावृष्टिकारक असुर है तथा स्वयं मेघ भी है जिसके वध से उसके द्वारा अवरुद्ध जल पृथ्वी पर आता

(१) Encyclopeadia Brittanica—Calendar (२) ऋ० सं० ८।७२।७-८
(३) अथर्ववेद संहिता ४।१।६।१

है। रावण के पुत्र मेघनाथ का नाम इन्द्रजित् है। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर इन्द्र का वृत्र से प्रायः परास्त हो जाने का भी वर्णन है। रावण का भाई कुम्भ-कर्ण वृत्र की भाँति ६ महीने सोया रहता था। रावण की सेना का वर्णन वैदिक वृत्र के अनुचरों के वर्णन जैसा है। स्वयं 'रावण' का अर्थ 'रव' अर्थात् घोर शब्द करनेवाला वृत्र अथवा आच्छादक किंवा जलनिरोधक मेघ ही है।

राम के प्रधान सहायक हनुमान हैं। हनु का अर्थ चिबुक अथवा 'दाढ़' है। ऋग्वेद में अग्नि तथा इन्द्र दोनों को ही शिप्री, महाहनु अर्थात् हनुमान कहा गया है। वैसे हनुमान लांगूल वानर थे तथा सीता को लांगल अर्थात् हल द्वारा ढूंढा जाता है। हनुमान राम के दूत थे। ऋग्वेदोक्त अग्नि-वर्णन में अग्नि भी देवदूत है। हनुमान ने राक्षसों की लंका भस्म कर दी। अग्नि ने भी दस्यु-पुरों को जलाया था। हनुमान की भाँति वेदोक्त अग्नि में पर्वतों को उखाड़ने तथा वृक्षों को गिरा देने की शक्ति थी। यह सब पूर्वकथित 'अग्नि'-चरित्र में कहा जा चुका है। हनुमान वायु वा मरुत के पुत्र अथवा अंजनि अर्थात् अन्तरिक्ष के गर्भ से रुद्र के पुत्र हैं तथा उनमें ऋग्वेदोक्त मरुद्गणों के गुण भी वर्तमान हैं। हनुमान के अनेक गुण इन्द्र के समान हैं। इन्द्र ने उषा का रथ तथा सूर्य का रथ तथा सूर्य का चक्र तोड़ दिया था। हनुमान भी बाल-रवि भक्षण कर गये थे। एडिनबरा-विश्वविद्यालय के संस्कृत-अध्यापक 'कीथ' महाशय के अनुसार हनुमान वृष्टिकारक मौसिमी वायु के अधिष्ठाता हैं जो दक्षिण दिशा में अर्थात् लंका की ओर, सीता अर्थात् कृषि अथवा कृषिवर्धक जल की खोज में जाते हैं। उनकी सहायता से विश्वपोषक विष्णु-रूपी राम जलनिरोधक अर्थात् कृषिके हेतु हानिकारक शक्तियों पर विजय प्राप्त करके कृषिवर्धक वर्षा को ले आते हैं। बीजारोपण के समय कृषि पुनः सीता की भाँति पृथ्वी के गर्भ में चली जाती है।

रामायण के नायक राम समय-समय पर ऋग्वेद के इन्द्र की भाँति राक्षसों को अर्थात् मनुष्य को कष्ट पहुँचानेवाली शक्तियों को नष्ट करते थे। इन राक्षसों में विश्वरूप की भाँति एक इन्द्रशत्रु तीन शिरोंवाला त्रिशिरा भी था। ऋग्वेद १।८०।७ में इन्द्र को मायावी राक्षस माया-मृग को मारनेवाला कहा गया है। राम ने भी मायामृग-रूपी मारीच का वध किया था। विष्णु ने राजा बलि को बाँधा तथा राम ने बलि को मारा। राम ने विभीषण को लंका का राजा बनाया। ऋग्वेद में स्वयं देवराज इन्द्र का नाम विभीषण है।[१] अथर्ववेद में 'राम' शब्द रोगनिवारक ओषधियों के लिए भी आया है।[२]

(१) ऋ० सं० ५।३४।६ देखिये पृष्ठ ४६ (२) अ० सं० १।५।२।१

रामायण की कथा वस्तुतः वेदोक्त प्राकृतिक देवी-देवताओं के वर्णन का रूपक है। रामायणकार ने स्वयं अपने ग्रन्थ को 'वेद के अर्थ को स्पष्ट करनेवाला' कहा है—**स तु मेधाविनी द्रष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठि तौ। वेदोपबृंहणार्थाय ताव-ग्राहयात प्रभु:।** पवित्र वाल्मीकि ने उन दोनों भाइयों अर्थात् लवकुश को मेधावी तथा वेदों में निपुण देख कर वेदार्थ को स्पष्ट करने के हेतु उन्हें इस काव्य को ग्रहण कराया।[१]

राम के प्रधान सहायक हनुमान के विषय में तो कहा जा चुका है। यों राम की सारी सेना वानरों की ही थी। प्राचीन जातियों में एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उछलनेवाले वानरों को आकाशचारी देवताओं का प्रतिरूप माना जाता था। ऋग्वेद में सूर्य को वृषाकपि कहा गया है। सीता-हनुमान-संवाद की भाँति ऋग्वेद में इन्द्राणि तथा वृषाकपि का संवाद उद्धृत है।[२] यजुर्वेद में शुक्र अर्थात् ज्येष्ठ के महीने में 'कपि' को बलि का पशु कहा गया है। चीनी राशिचक्र में इस मास की राशि को वानर-राशि कहा जाता है।[३] इसी महीने में वृष्टि को लानेवाली हवाएँ उठने लगती हैं। रामायण में वानर-सेना की उत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है। जब विष्णु ने दशरथ के यहाँ पुत्र-रूप से उत्पन्न होना स्वीकृत कर लिया तब ब्रह्मा ने देवताओं को अप्सराओं इत्यादि के शरीर से वायु के तुल्य वानर-रूप पुत्रों को उत्पन्न करने को कहा जो विष्णु के कार्य में सहाय्य दे सकें। ऋग्वेदोक्त इन्द्र, सूर्य, बृहस्पति, अश्विनीकुमार आदि देवताओं से ही भिन्न-भिन्न वानर उत्पन्न हुए। स्वयं वायु ने हनुमान को जन्म दिया।[४] वानरों के साथ ऋक्षों ने भी राम की सहायता की थी। ऋग्वेद में 'ऋक्षु' शब्द तारा अथवा तारामंडलों किंवा नक्षत्रों के लिए व्यवहार किया गया है। ऐसा प्राचीन विश्वास है कि भिन्न-भिन्न नक्षत्रों के प्रभाव से ही सूर्य द्वारा भिन्न-भिन्न ऋतुओं की उत्पत्ति होती है।

रामचन्द्र के जन्म का समय वाल्मीकिय रामायण में इस प्रकार दिया गया है। चैत्र मास नवमी तिथि दिति दैवत्य अर्थात् पुनर्वसु नक्षत्र तथा कर्क लग्न में चन्द्रमा के साथ बृहस्पति के उदय होने पर जब पाँच तारा-ग्रह बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि अपने-अपने उच्च स्थान में थे, ऐसे ही समय में राम का जन्म हुआ।[५] पुनर्वसु नक्षत्र रेवती से गणना करने पर नवां नक्षत्र

(१) रामायण १।४।६ (२) ऋ० सं० १०।८६ देखिये पृष्ठ ५३ (३) Early Astronomy and Cosmology. P. 56, 57, 173 (४) वाल्मीकिय रामायण १।१७–१–२५ (५) वाल्मीकिय रामायण १।१८।७–११

है, अतः चैत्र की नवमी को जब चन्द्रमा पुनर्वसु नक्षत्र में होगा तब सूर्य रेवती नक्षत्र में होंगे। रामायण के रचनाकाल तक वसंत सांपातिक विन्दु रेवती नक्षत्र के समीप चला आया था। वैदिक तथा वेदांग-काल में पूर्णिमा तथा अमावस्या के साथ-साथ अष्टक से भी समय की गणना होती थी।[१] अष्टक वह समय है जब सूर्य तथा चन्द्रमा में वृत्त के चतुर्थांश अर्थात् ९०° का अन्तर हो। इस समय का ठीक-ठीक ज्ञान करना पूर्णिमा अथवा अमावस्या के काल-निर्धारण से कहीं अधिक सुगम है। संवत्सर की गणना सभी प्राचीन देशों में बसंत सांपातिक विन्दु से ही आरम्भ होती थी जब सूर्य ठीक-ठीक विषुव स्थान पर होता है तथा दिनरात समान होते हैं। सैद्धान्तिक युग-पद्धति में युगों का अथवा मन्वन्तर कल्प आदि का आरम्भ ग्रहों के उच्च स्थान से ही लिया गया है। सृष्टि का आरम्भ अर्थात् ग्रहों की गति का आरम्भ भी वैसे ही समय से माना गया है।[२] राम के जन्म के समय चन्द्रमा का उदय हो रहा था। यह समय सूर्य के रेवती नक्षत्र में होने का अर्थात् मेष-संक्रान्ति का था। नवमी को चन्द्रमा का उदय दोपहर को होगा जब मेष-राशि शिरोविन्दु के समीप तथा उससे तीन राशि हटकर कर्क-राशि पूर्व क्षितिज पर होंगे। कर्कराशि के उदय होने का समय कर्क लग्न का समय है। बृहस्पति ग्रह की गति से भी संवत्सरों की गणना अब तक होती आयी है। राम के जन्म का समय स्पष्टतः किसी ज्योतिषीय पद्धति के अनुसार काल-गणना आरम्भ करने का समय जान पड़ता है जिसमें बार्हस्पत्य युगपद्धति अष्टक गणनाशैली तथा रेवती-स्थित बसंत संपात की परिपाटी थी।

राम ने जिन राक्षसों का वध किया वे यज्ञ में विघ्न देनेवाले थे। यज्ञ का वैदिक नाम 'क्रतु' अर्थात् कर्म है तथा वृत्र का अर्थ विघ्नकारी है। राम ने सर्व-प्रथम ताटका राक्षसी को मारा था। ताटका 'पुरुषादी, महायक्षी, विकृता तथा विकृतानना' थी। 'वह बाहुओं को उठाकर गर्जती हुई राम पर दौड़ी। बड़ी धूल उड़ाती हुई उस ताटका ने धूल के प्रभाव से उन दोनों रामलक्ष्मण को मुहूर्त भर के लिए मोहित कर दिया।'[३] आइसलैंड द्वीप से लेकर बेबीलोन पर्यन्त झंझावात किसी पुरुष अथवा स्त्री रूपधारी राक्षस के प्रभाव का फल माना जाता है। स्काटलैंड में झंझावात को 'कालियक' नाम की राक्षसी कहते थे जिसपर सूर्य देवता ने विजय पायी। बेबीलोन के 'मरोदच' देवता ने उच्छृंखलता की अधिष्ठात्री दानवी 'तिआमत' का वध किया।[४]

---

(१) भारतीय ज्योतिषशास्त्र-४४। (२) सूर्यसिद्धान्त। (३) वा० रा० १।२६। (४) Myths of Babylon and Assyria. P. 73, 101, 144.

राक्षसों का वध करने के हेतु विश्वामित्र ने राम को जो अस्त्र दिये उनके नाम ये हैं—दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, वज्र, शैवशूल, ब्रह्मशिरस्, ऐषीक, मोदकीगदा, शिखरीगदा, धर्मपाश, कालपाश, वारुणपाश, वारुणास्त्र, शुष्क-अशनि, आर्द्रअशनि, पैनाक, नारायणास्त्र, शिखर नामक आग्नेयास्त्र, प्रथम नामक वायव्यास्त्र, हयशिरस्, क्रौंच, विष्णुशक्ति, रुद्रशक्ति, कंकाल, मुसल, कापाल, कंकण, असिरत्न, मानव, प्रस्वापन, प्रशमन, सौम्य, वर्षण, शोषण, सन्तापन, विलापन, मदन, मोहन, तामस, सौमन, संवर्त, सौम्य, शिशिर, त्वाष्ट, शितेषु ......।[१] भिन्न-भिन्न प्रकार के चक्र समय अथवा संवत्सर के ही रूप हैं, जैसा चतुर्भुज विष्णु के आयुधों के वर्णन में कहा जा चुका है। वज्र, ब्रह्मास्त्र आदि तथा शुष्क एवं आर्द्रअशनि तड़ित् के भिन्न-भिन्न रूप हैं। अन्य अस्त्र सूर्य अथवा अन्य भौतिक शक्तियों के विभिन्न गुणों के नाम हैं। राम के आयुध कल्याणकारी तथा विपत्तिनिवारक प्राकृतिक विभूतियों के ही भिन्न-भिन्न गुण हैं। राक्षसों पर राम की विजय प्रकृति के सौम्य तथा पोषक गुणों की ही जीत है। द्विपद तथा चतुष्पदों का विनाश करनेवाली प्राकृतिक आपदाएँ ही राक्षस-राक्षसी हैं।

रामायण में राम द्वारा रुद्र के धनुष का टूटना कदाचित वैष्णव-धर्म की रौद्र-धर्म पर महत्ता दिखाने की चेष्टा है। इन्द्र के अथवा रुद्र के परशु को तीक्ष्ण करनेवाले अग्नि के प्रतिरूप परशुराम हैं। परशुराम भृगुवंशी थे। शुक्र तारा को भी भृगु अथवा भार्गव कहते हैं। शुक्र का ही ऋग्वैदिक नाम कवि उशना है तथा आँधी-पानी के देवता इन्द्र एवं कवि उशना के युद्ध का वर्णन ऋग्वेद में आया है।[२]

राम का वनवास चौदह वर्ष के लिए हुआ था। वर्ष, समय अथवा देश का कोई भी विभाग हो सकता है। एक संवत्सर में सूर्य २८ नक्षत्रों को पार करते हैं। इनमें से १४ नक्षत्र उत्तरायण के हैं तथा चौदह नक्षत्र दक्षिणायनके। यदि राम को कृषि का देवता माना जाय तो यवादि अन्न १४ नक्षत्र पर्यन्त खेतमें रहते हैं, फिर घर आते हैं। समुद्र के पार अर्थात् वृष्टि के पश्चात् ही सीता अर्थात् कृषि का आरम्भ होता है। राम ने जब रावण पर विजय पायी अर्थात् वर्षाऋतु के पश्चात् विजयादशमी के लगभग ही, यवादि अन्नों की कृषि आरम्भ होती है।

---

(१) वा० रा० १।२७। (२) ऋ० सं० १।५१।११

अध्यात्मरामायण के अनुसार राम तो साक्षात् विष्णु थे, लक्ष्मण उनके प्रिय पार्षद शेषनाग तथा भरत-शत्रुघ्न क्रमशः चतुर्भुज विष्णु के यश-विस्तारक शंख तथा शत्रुनाशक आयुधचक्र अथवा कालचक्र थे। सीता स्वयं मधुकैटभमर्दिनी योगमाया थीं।[1] रामायण की कथा का वेद ब्राह्मण आदि के विष्णु तथा अन्य महान प्राकृतिक देवताओं तथा ऋग्वेदोक्त अदिति तथा वाक् के वर्णन से सम्बन्ध स्पष्ट दीख पड़ता है।

---

(१) अध्यात्मरामायण १।४।१७–१८

पन्द्रहवाँ अध्याय

कृष्णलीला

श्री हौप्किंस ने अपनी पुस्तक 'रेलिजन्स आफ इण्डिया' में कृष्ण को यादव-पाण्डव जाति का प्रधान देवता माना है जिन्होंने दिल्ली के समीप कौरवों को परास्त करके अपना आधिपत्य स्थापित किया। वैसे कृष्ण वर्ण कृषि की आधार पृथ्वी को माना गया है। जैसा पहले बताया जा चुका है कि कौशिक-सूत्र में कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता को श्यामा कहा गया है। जगन्माता 'काली' एशियाई देशों में कृष्ण-वर्णा पृथ्वी का ही द्योतन करती हैं।

कृष्ण नाम से विष्णु की पूजा मेगास्थनीज के समय से तो होती ही थी। मेगास्थनीज ने हृषिकेष कृष्ण का वर्णन 'हेराक्लेस' नाम से किया है। पातंजलि के महाभाष्य में कृष्ण तथा कंस प्रकृति के पोषक तथा विनाशक प्रभावों के रूप में आये हैं। परन्तु छान्दोग्योपनिषद् में देवकी-पुत्र कृष्ण का वर्णन है जिन्हें घोर अंगिरस ने यज्ञ की निस्सारता तथा आदित्य की महत्ता की विद्या बतायी।[1] इससे कृष्ण के किसी देवकी नाम की मानुषी माता का पुत्र होना जान पड़ता है। परन्तु राम की भाँति कृष्ण के विषय में भी यह कहा जा सकता है कि कृष्ण नाम का कोई ऐतिहासिक व्यक्ति हुए हों अथवा नहीं, कृष्ण के अद्भुत कर्म वैदिक देवताओं की वन्दना के ही रूपक हैं।

वैदिक काल में कृष्ण नाम से परमेश्वर की पूजा होती हो या नहीं, कृष्ण शब्द वेदों में देवताओं के सम्बन्ध में कई बार आया है। ऋग्वेद में अग्निको आंगरस कहा है जिससे देवताओं की उत्पत्ति हुई। छान्दोग्योपनिषद् में कृष्ण के गुरु घोर अंगिरस हैं। ऋग्वेद में ही अग्नि को कृष्ण कहा है क्योंकि जहाँ से होकर यह जाता है वह मार्ग कृष्ण वर्ण हो जाता है। पुनः अग्नि तथा कृष्ण

---

(१) छा० उ० ३।१७।६-७

को एक दूसरे का सहचर कहा गया है। वैश्वानर अग्नि को अहः कृष्णार्जुन अर्थात् कृष्वर्णा रात्रि तथा श्वेतवर्णा दिवस के सम्मिश्रण अहोरात्र का प्रतिरूप सूर्य माना गया है । अग्नि की ज्वालाएँ कृष्ण तथा अर्जुन अर्थात् कृष्णवर्ण तथा श्वेतवर्ण की कही गयी हैं । अग्नि कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण है। यजुर्वेद में भी अग्नि को कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण कालिख का उत्पादक कहा गया है ।[१] ऋ० सं० १।-१६४।४७ के **'कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा'** मन्त्र में अन्तरिक्ष को सूर्य आदि की गति को नियमित करनेवाला कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण कहा गया है जिसमें पहुँच कर सूर्य की हरणशील किरणें पृथ्वी का रस सोख कर पुनः वृष्टि द्वारा पृथ्वी को आर्द्र करती हैं।

ऋग्वेद में इन्द्र की प्रार्थना में भी कृष्ण शब्द कई बार आया है । इन्द्र को कृष्णों से अर्थात् रात्रि के अन्धकार से, उषा को मुक्त करनेवाला तथा कृष्ण एवं रोहित अर्थात् काली तथा लाल गौओं में श्वेत दुग्ध को स्थापन करने-वाला कहा गया है । इन्द्र कृष्ण के अनुगामी हैं...... तथा पृथ्वी को प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं अर्थात् कृष्ण वर्णारात्रि के अनन्तर सूर्यरूपी परमैश्वर्यशाली देवता आकर अपना प्रकाश फैलाते हैं अथवा कृष्ण-वर्ण मेघों के पीछे-पीछे चलकर उनका नाश करके इन्द्र उनसे जल बरसाते हैं । सूर्य के चक्र को भंग करनेवाले अर्थात् सूर्य के प्रकाश को मेघों से ढंकनेवाले कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण मेघों के अधिदेवता इन्द्र अन्तरिक्ष के जल में निवास करते हैं ।[२]

कृष्ण का विष्णु अथवा परमैश्वर्यशाली सूर्य का रूप होना यों तो असंगत-सा लगता है क्योंकि कृष्ण का अर्थ ही श्याम वर्ण होता है जब सूर्य का प्रकाश उज्जवल है । इस रहस्य का उद्‌घाटन छान्दोग्योपनिषद् के उन मन्त्रों से होता है जिनमें सूर्य का सूक्ष्म रूप 'नीलः परः कृष्णः' अर्थात् नील के परे काला कहा गया है ।

'अथ यदैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्सामतदेतदेत-स्यामृच्यध्यूढँ साम तस्मादृच्य ध्यूढँ साम गीयते ।'[३] यह जो आदित्य का शुक्ल प्रकाश है वही ऋक् है तथा जो आदित्य का नील से परे कृष्ण अर्थात् नीले आकाश से परे अदृश्य रूप अथवा अतिशय नील कृष्ण अथवा रंगावलि में नीले से परे जो अदृश्य रंग वा वर्ण है वही साम है । आदिन्य का यह कृष्ण वर्ण एकान्त में समाहिता अर्थात् शास्त्र-संस्कृता दृष्टि से ही देखा जा सकता है ।

अथ यदैवैदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाथ य एषोडन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुहिरण्य केश आप्रणखात्सर्व एवं सुवर्णः।[४]

---

(१) देखिये पृष्ठ ३३ । (२) देखिये पृष्ठ ४५ । (३) छा० उ० १।६।५ । (४) छा० उ० १।६।६ ।

यह जो आदित्यका शुक्ल प्रकाश है वहीउ सका नील से परे कृष्ण रूप भी है। दोनों एक ही हैं तथा उन्हीं के मध्य में हिरण्मय अर्थात् ज्योतिर्मय पुरुष दीख पड़ता है जिसके केश, भौंह, नख सभी ज्योतिर्मय हैं।

अथर्ववेद में ओषधि को राम, कृष्ण तथा असिक्नि अर्थात् नील वर्ण कहा गया है।

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च। इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्।—(अथर्ववेद संहिता १।५।२।१)।

हे ओषधे! तू रात्रि में उत्पन्न होने के कारण कृष्ण वर्ण है तथा राम अर्थात् सुखकर भी है तथा नीलवर्ण भी है।

ओषधि का अर्थ रोगनिवारक ओषध भी होता है तथा किसी भी उद्भिद को ओषध कहते हैं। राम, कृष्ण तथा असित् वर्ण का कृषि से सम्बन्ध स्पष्ट है।

केवल कृष्ण ही का नाम वेदों में नहीं आया है परन्तु कृष्ण की प्रिया राधा-रानी भी वेदों में अनेक स्थानों पर रैवा राधस् अर्थात् धन अथवा अन्नके अर्थमें वर्णित हैं जैसा अग्नि, इन्द्र आदि के वर्णन में पहले ही बताया जा चुका है। अग्नि के अर्चन से पुरुष 'रै' अर्थात् धन प्राप्त करता है। यह अग्नि धर्मात्माओं के 'रै' अर्थात् धन को बढ़ानेवाला है। जब अग्नि को 'राधस्' अर्थात् धन वा अन्न भेंट किया जाता है तब अग्नि देवताओं से उनकी प्रशंसा करती है। अग्नि रयिपतियों में सबसे श्रेष्ठ है। अग्नि मनोवाञ्छित कामनाओं को बरसाने-वाला वृष तथा भा अर्थात् ज्योतिर्मय भानु है अर्थात् वृषभानु है। वृषभानु अग्नि से रै अर्थात् धन उत्पन्न होता है। कृष्ण अर्थात् रात्रि की शोभा अग्नि की ज्वालाओं से, अतः अग्नि के राधस् से होती है। अग्नि सुराधा है अर्थात् अच्छे रै अथवा धन से ओतप्रोत है।[1]

ऋग्वेद में इन्द्र को भी 'राधानांपते' अर्थात् धनों का पति कहा गया है। भक्तों को इन्द्र राधस् अर्थात् धन देकर उन्हें सुराधा अर्थात् धनवान बनाने-वाले हैं। इसी प्रकार वरुण आदि देवता भी राधस् देनेवाले हैं। 'राधस्' इन देवताओं के वशीभूत है। ये सभी देवता एकदेवाधिदेव आदित्य के रूप में हैं जो 'राधाओं के पति हैं'। ऋग्वेद में मरुद्गणों को भी यमुना अर्थात् तीव्रगति जलधारा से राधा अर्थात् धन की सृष्टि करनेवाला कहा गया है।

देवकी के आठवें पुत्र कृष्ण हैं। मार्तण्ड सूर्य ऋग्वेद-संहिता के अनुसार

(१) देखिये पृष्ठ २५, ३२, इत्यादि

अदिति के आठवें पुत्र हैं । कृष्ण के पिता वसुदेव हैं । ऋग्वेद-संहिता में अग्नि 'वसु' अर्थात् लोकों को बसानेवाला है । अग्नि कृष्ण कालिख को उत्पन्न करनेवाला है । अग्नि देवताओं का आधार है तथा देवमाता अदिति हैं अर्थात् देवताओं के उत्पादन का हेतु है ।[१]

कृष्ण की माता देवकी अपने नाम से ही देवताओं की माता अदिति मालूम पड़ती है । अंगिरस अथवा घोर अंगिरस देवताओं का गुरु अग्नि है। कृष्ण का छान्दोग्योपनिषद् में देवकी-पुत्र कहा जाना ही उनके अदिति-पुत्र आदित्य होने की पुष्टि करता है जिन्होंने अंगिरस अग्नि से शिक्षा प्राप्त की ।

कृष्ण गोपों के बीच गौओं के चरागाह ब्रज में गौ चराते थे । ऋग्वेद में लगभग सभी प्रधान देवताओं को गोपा अर्थात् रक्षक कहा गया है। अग्नि गोपा है। अग्नि के प्रताप से गायों का दूध बढ़ जाता है। अग्नि सभी पशुओं का गोपा अर्थात् रक्षक है । यह गो तथा वाजस् अर्थात् अन्न का ईशान है । अग्नि देवताओं का गोपा अर्थात् रक्षक है। अग्नि कर्म करनेवालों का गोपा है ।[२]

इन्द्र गायों के हेतु व्रज अर्थात् चरागाह-भूमि को समुन्नत करता है।[३] वल के दुर्ग को तोड़कर इन्द्र ने देवताओं की गौओं अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा आदि के प्रकाश का उद्धार किया ।[४]

पारसी धर्मग्रन्थ अवस्ता में सष्टिमात्र को 'गेउश' अर्थात् 'गो' तथा सृष्टि की देवी को 'गेउश उर्वान' गो की आत्मा कहा गया है ।

कृष्ण को गोरस प्रिय था । ऋग्वेदोक्त मन्त्रों में अग्नि को भी गोरस का चाहनेवाला कहा गया है ।[५] गोरस अर्थात् मक्खन वा घृत से ही अग्नि की वृद्धि होती है । अग्नि देवताओं के पास हवि को पहुँचानेवाला है अतः अग्नि को अर्पित किया गया गोरस सभी देवताओं के समीप पहुँचता है । यज्ञ के विशेष देवता विष्णु हैं अतः यज्ञ की अग्नि को हर्षित करनेवाले गोरस का विष्णु को प्रिय होना स्वाभाविक है ।

कृष्ण को गोरस इतना प्रिय था कि वे उसे चुराते भी थे। कृष्ण इस कारण हरनेवाले हरि कहलाये हैं । ऋग्वेद-मन्त्रों में अग्नि शत्रुओं का धन हरनवाला धनंजय है । ऋग्वेदोक्त 'सर्व हरिर्वा इन्द्र' सूक्त में सूर्यरूपी इन्द्र उदक् अथवा घत को सोखनेवाले अर्थात् हरनेवाले हैं । इन्द्र गो अर्थात् पृथ्वी के रस को भी हरनेवाले हैं । सूर्य की किरणें हिंसकों का बल अपहरण करनेवाली हैं ।[६]

---

(१) देखिये पृष्ठ २७। (२) देखिये अग्निचरित्र पृष्ठ २५–३५ । (३) देखिये पृष्ठ ३८ (ऋ०सं०१।१०।७)। (४) देखिये पृष्ठ ३९ (ऋ० सं० १।११।५) एवं पृष्ठ ४९ (ऋ० सं० ६।१७।६)। (५) अहुनवैति गाथा। (६) देखिये पृष्ठ ५३ ।

कृष्ण की माता देवकी थीं पर उनका लालन-पालन यशोदा माता ने किया। अग्नि की भी दो माताएँ थीं। अग्नि वसुपति अथवा वसुदेव है तथा देवताओं को आनन्द देनेवाला नन्द भी। अग्नि का पुत्र अग्नि ही होता है। यही नहीं, अग्नि में नारी के गुण भी हैं तथा देवपत्नियाँ इला, सरस्वती, मही, देवमाता अदिति, स्तुति से बढ़नेवाली भारती, विद्या तथा शतसंख्यक हिमवाली अर्थात् हिमवान पर्वतों-वाली हिम की भाँति पिघलनेवाले समय के मध्य में स्थित हैमवती उमा अथवा पृथ्वी एवं देवमाता अदिति, ये सभी अग्नि के ही रूप हैं। अग्नि देवताओं का बन्धु तथा सखा भी है। सूर्य भी वैश्वानर अग्नि का रूप है। यज्ञ के अधिष्ठाता विष्णु भी अग्नि से सम्बद्ध हैं। अग्नि कृष्ण है। सूर्य का भी सूक्ष्म रूप कृष्ण ही है। 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेवबन्धुश्च सखात्वमेव।'

बालक कृष्ण के चमत्कारिक कार्यों में प्रधान कार्य पूतना-वध, कालिय-दमन, तथा गोवर्द्धन-धारण हैं। इन तीनों का ऋग्वेदोक्त अग्नि, इन्द्र विष्णु, सवितृ आदि के मन्त्रों में स्पष्ट वर्णन मिल जाता है। ताटका-वध की भाँति पूतना-वध भी आंधी-तूफान पर सूर्य देवता की विजय का वर्णन है। पूतना का दुग्धपान इन्द्र द्वारा मेघों का दोहन है तथा भरी हुई पूतना का विशाल शरीर इन्द्र द्वारा मारे गये वृत्र का जलरूपी विशाल शरीर है जो पृथ्वी पर फैल जाता है।[१] बालक इन्द्र को कुषव नामक राक्षस निगलने आया पर इन्द्र ने उसे मार डाला तथा जलों को मुक्त कर दिया। बाल कृष्ण ने इसी भाँति अनेक राक्षसों का हनन किया।[२]

कालिय-दमन स्पष्ट ही इन्द्र द्वारा सर्पाकार जलनिवासी 'अहि' वृत्र का वध है जिसे मारने के कारण इन्द्र अहिगोपा अर्थात् अहि से रक्षा करनेवाले कहलाये। वृत्र को इन्द्र ने ही नहीं मारा था। अग्नि तथा विष्णु को भी ऋग्वेद में वृत्र को मारनेवाला कहा गया है। वास्तव में यह भी एक 'हिरण्यगर्भ' के रूप हैं। वृत्र का सर्प होना कदाचित इसके नाम 'अहि' से सम्बद्ध है जिसका अर्थ हानि-कारक हिंसक अथवा सर्प हैं। चन्द्रमा के २८ नक्षत्रों में एक नक्षत्र अश्लेषा अथवा 'सर्प' भी है जो पाश्चात्य ज्योतिष में भी जल-निवासी सर्प 'हाइड्रा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैदिक काल में वर्षारंभ में सूर्य का स्थान इसी नक्षत्र में होता था सम्भवतः तत्कालीन विश्वास यह रहा हो कि यही नक्षत्र जल को रोकनेवाला है क्योंकि यह वर्षा के 'द्वार' पर है तथा जब सूर्य अपने तेज से इसे जला देते

(१) देखिये पृष्ठ ४०। (२) देखिये पृष्ठ ४७–४८।

हैं अर्थात् अदृश्य कर देते हैं तभी जल 'अनिरुद्ध' होकर पृथ्वी पर गिरने लगता है। वर्षा के आरम्भ के आंधी-तूफान तथा उस समय की दूषित जलवायु ही कालिय नाग की फुफकार तथा उसके द्वारा दूषित जल है जिनसे पशु तथा मनुष्य दोनों को महामारियों से हानि होती है। कालिय-दमन कृष्ण अर्थात् सूर्य द्वारा इस आकाशिक सर्प का नष्ट अथवा अदृश्य किया जाना है।

कृष्ण का तीसरा महान कार्य इन्द्र द्वारा किये गये घोर आच्छादन से ब्रज की रक्षा के लिए गोवर्द्धनगिरि का धारण करना है। ऋग्वेद में अग्निरूपी कृष्ण ने आच्छादक वृत्र से जगत की रक्षा की। उपासकों के हित के लिए इन्द्र पर्वत अर्थात् मेघ को परिचालित करते हैं अथवा धारण करते हैं। इन्द्र ने 'पर्वत' अर्थात् मेघ धारण करके ही गो अर्थात् जल अपहरण करनेवाले वल से युद्ध किया था। पर्वत को उठानेवाले इन्द्र आच्छादक मेघ...को नष्ट करते है। वृत्रहन्ता इन्द्र का पुराणों में स्वयं वृत्र की भाँति आच्छादक हिंसाकारी हो जाना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। वास्तव में वैदिक इन्द्र तथा वृत्र में अन्तर अत्यन्त न्यन है। दोनों ही बलशाली 'असुर' हैं। ध्वंसकारी दोनों ही हैं। कभी वृत्र जलनिरोधक होता है तो वृष्टिकारक इन्द्र उसका नाश करके पृथ्वी पर जल बरसाते हैं। कभी वृत्र स्वयं आच्छादक मेघ बनकर अतिवृष्टि से जगत की हिंसा करने लगता है तो इन्द्र उसका नाश करके जगत को इस आच्छादन से मुक्त करते हैं। देवासुर एक ही प्रजापति की सन्तान थे। दोनों एक प्रकृति के ही क्रमशः सौम्य तथा हिंसक गुणों के प्रतीक माने गये तथा इसी प्रकार के उनके विषय में भिन्न-भिन्न कथाएँ प्रचलित हुईं। विष्णु को इन्द्र से बड़ा माननेवालों के लिए इन्द्र को वृत्र जैसा बताना स्वाभाविक था।

मेघ-रूपी पर्वत गोवर्द्धन है क्योंकि उससे वृष्टि होती है जिससे गवादि पशुओं को भोजन प्राप्त होता है। यों तो वेदोक्त सभी देवता गोवर्द्धन हैं अर्थात् गोधन की वृद्धि अथवा उन्नति के कारण हैं।

यदि कालिय-दमन को सूर्य द्वारा सर्प-नक्षत्र का अदृश्य किया जाना मान लिया जाय तो शकट-भंजन तथा यमलार्जुन उद्धार की कथाएँ सूर्य द्वारा रोहिणी-शकट तथा दो जुड़वे सरीखें ताराओं के पुनर्वसु नक्षत्र वा मिथुन राशि में प्रवेश के रूपक जान पड़ते हैं। रोहिणी नक्षत्र तथा उसके समीप के पाँच अन्य ताराओं को मिलाकर ज्योतिष में रोहिणी-शकट कहते हैं तथा किसी ह का इस शकट में आना शकट-भेद कहा जाता है। पुनर्वसु नक्षत्र वा मिथुन राशि के दो तारे पाश्चात्य ज्योतिष में यमलार्जुन के दो के दो दक्षों की भाँति कैस्टर तथा पौलक्स नाम के जुड़वाँ भाई माने जाते थे।

कृष्ण ने अनेक राक्षसों का वध किया। उनका आकार भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों जैसा था। तारामंडलों के भी वैसे ही आकार कल्पित किये गये हैं। राक्षसों का एक नाम वृक भी है। निरुक्तकार ने चन्द्रमा को वृक कहा है। राक्षस निशाचर हैं। तारे केवल रात को ही दिखाई देते हैं। दिन में 'वृक' चन्द्रमा भी आभाहीन हो जाता है। अमावस्या को सूर्य के अत्यन्त समीप पहुँच कर तो 'वृक' चन्द्रमा का लोप ही हो जाता है।

विष्णुपुराण तथा भागवत में कृष्ण द्वारा गोपियों के साथ 'रासलीला' तथा जल में नहाती हुई गोपियों के चीरहरण का वर्णन है। जैसा पहले कहा जा चुका है, ऋग्वेद में आदित्य अथवा आदित्यों का एक नाम जार अर्थात् जल अथवा रात्रि को जलाने अथवा नष्ट करनेवाला भी है। जल का जार आदित्य सभी भूतों का जार है, क्योंकि जल सर्वत्र वर्तमान है। प्रसिद्ध ज्योतिर्ग्रन्थ आर्यभटीय के हिन्दी अनुवादक स्वर्गीय ठाकुर उदयनारायण सिंह द्वारा लिखित भूमिका में 'रासलीला' को सूर्य द्वारा आकाशिक राशिचक्र का भ्रमण तथा चीरहरण को आकाशिक 'जल' अर्थात् 'व्योम' में 'निगमन' ताराओं के प्रकाश का अपहरण बताया गया है। कृष्ण ने कुब्जा का कूबड़ दूर किया। अग्नि, इन्द्र तथा वायु ने उभड़-खाबड़ पृथ्वी को समतल किया। कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी थीं। सूर्य वा इन्द्र 'दर्शनीय रुक्म' हैं। कृष्ण अर्जुन के सखा हैं। वेदों में कृष्णार्जुन के नाम साथ-साथ आये हैं। इन्द्र ने सूर्य के रथ का चक्र उठाया था। कृष्ण ने भीष्म पर अर्जुन के रथ का चक्र फेंका था। अग्नि, देवताओं का तथा विशेषकर इन्द्र का सारथी है। अग्नि कृष्ण भी है। कृष्ण अर्जुन के सारथी थे। कृष्ण का जन्म भाद्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी को हुआ था जब चन्द्रमा कृत्तिका से रोहिणी में जा रहे थे। वेदांग ज्योतिष में अष्टक अर्थात् सूर्य-चन्द्रमा के ९०° के अन्तर पर होने का विशेष महत्व था एवं नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से होती थी। कृष्णाष्टमी का सम्भवतः कोई ज्योतिषीय महत्व रहा हो।

कृष्ण-शत्रु कंस का वर्णन पातंजलि के महाभाष्य में आया है जिसमें कृष्ण तथा कंस एक दूसरे के विरोधी माने गये हैं। गोमिल गृह्यसूत्र में कंस अर्थात् कांसे के पात्र का व्यवहार परिणहन संस्कार में बताया गया है जिसमें ब्रह्मचारी के नेत्र बाँध कर उसके दोनों हाथों को भी बाँध कर पानी में डाल दिया जाता था।[१] इसी सूत्र में 'कंस' वृषभ का विकल्प भी कहा गया है।[२] गोमिल एवं

(१) गोमिल ३।२।३७ (२) गोमिल ३।२।४५–४७

द्राह्यायण गृह्यसूत्र में गोमांस द्वारा मांसाष्टका की निम्नलिखित विधि दी गयी है--...गौ के मारे जाने पर उरु तथा पित्तकोष को छोड़कर सब अंगों से मांस ग्रहण करके अग्नि में पकाकर कंस अर्थात् कांसे के बर्तन में रखकर...उससे आहुति देवे ।[1] कंस कृष्ण का प्रतिद्वन्द्वी माना गया है तथा गोमांस रखने के व्यवहार में आने से यह क्रूरता का द्योतक बना । कंस कृष्ण के समान कोई व्यक्ति रहे हों अथवा नहीं, उनकी कथाएँ तो प्रकृति के तथा क्रूर सौम्य प्रभावों की ही द्योतक हैं । पुराण तथा महाकाव्य के लेखकों ने तो अपने ग्रन्थों को वेद का भाष्य कहा ही है । गोमिल एवं द्राह्यायण गृह्यसूत्रों में मधुपर्क प्रदान में भी गोवध के हेतु उससे पूर्व कंसपात्र में मधुपर्क अर्पण आवश्यक कहा गया है । इसके विपरीत इन्हीं सूत्रों में ब्रह्मचारी को कृष्णवस्त्र तथा कृष्णभक्ष कहा गया है अर्थात् सौम्य स्वभाव ब्रह्मचारी को मटमैला वस्त्र पहनना एवं मिट्टी के पात्र में खाना आवश्यक था ।

(१) द्राह्यायण गृह्यसूत्र ३।४

सोलहवाँ अध्याय

उपसंहार---देवी-देवता बनाम विज्ञान

पूर्वकथित विवरण से इतना तो स्पष्ट हो गया होगा कि देवता अथवा दैत्य आरम्भ में प्राकृतिक घटनाओं के कारण के रूप में ही मनुष्यों के जीवन में आये। उनके प्रारम्भिक रूप अथवा गुण मनुष्येतर प्राणियों जैसे थे तथा अधिकांश का रूप निर्धारित करने की कोई चेष्टा ही न की गयी । पीछे चलकर स्वभावत: मनुष्य ने इन अलौकिक शक्तियों में भी मानुषी रूप-गुण की कल्पना की । यहीं से इनके विषय की अनेक कथाओं का आरम्भ हुआ ।

विज्ञान के इस युग में देवता अथवा दैत्यों को भौतिक घटनाओं का कारण बताना असंगत-सा जान पड़ता है, पर वास्तव में आधुनिक विज्ञान की दार्शनिक भित्ति पौराणिक कल्पनाओं के अपेक्षाकृत उतनी दृढ़ नहीं है जितना समझा जाता है । देव-दानव के युग से आधुनिक काल तक प्राकृतिक घटनाओं के परस्पर क्रम के विषय में चाहे जितना भी ज्ञान संचय क्यों न हुआ हो, इनके कारण-विषयक ज्ञान में तब से अबतक उतना अन्तर नहीं हुआ है । प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैक्स बोर्न ने अपनी पुस्तक---'नैचुरल फिलौसोफी आफ कौज ऐण्ड चान्स' (Natural Philosophy of cause and chance.---Oxford University Press---1951) में बताया है कि प्राकृतिक घटनाओं का पारस्परिक क्रम जान लेना वैसा ही है जैसा रेलवे का टाइम टेबुल जान लेना । यदि रेलवे योग्य परिचालकों के हाथ में है तो टाइम टेबुल मात्र जान लेने से ही रेलगाड़ी कब कहाँ थी और कहाँ रहेगी इसका पूरा ज्ञान हो जाता है । यात्रियों को अपने दैनिक व्यवहार में टाइम टेबुल को छोड़कर और कुछ जानने की आवश्यकता नहीं है । रेलगाड़ी का कोई ड्राइवर अथवा गार्ड है या नहीं, टाइम टेबुल किसने बनाया, किसकी आज्ञा से टाइम टेबुल का पालन होता है, इन सारे विषयों के

ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग कुछ भी नहीं है । यह तो सर्वविदित है कि विज्ञान अभी तक जीवनतत्व का पता नहीं लगा सका है परन्तु निर्जीव विश्व के विज्ञान अर्थात् भौतिक विज्ञान के विषय में ऐसी धारणा प्रचलित है कि वैज्ञानिकों ने प्राकृतिक घटनाओं को परस्पर कार्यकारण-शृंखला में विद्ध कर दिया है तथा उनके ज्ञान के लिए प्रकृति के बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है । कार्य अवश्य कारण पीछे आता है परन्तु घटनाओं को केवल क्रमबद्ध कर देने से उनमें कार्यकारण-सम्बन्ध का होना सिद्ध नहीं होता । कार्यकारण-सम्बन्ध के लिए यह आवश्यक है कि जिस स्थान तथा समय पर कारण की समाप्ति हो उसी स्थान तथा समय से कार्य का आरम्भ हो । विज्ञान अबतक प्राकृतिक घट-नाओं में ऐसा सम्बन्ध स्थापित करने में विफल रहा है । न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण स्थान से सीमित नहीं था । किसी भी वस्तु का गुरुत्वाकर्षण उसी क्षण उस वस्तु से अत्यन्त दूर की वस्तुओं को प्रभावित करता है । क्रिया तथा प्रतिक्रिया को एक दूसरे के समान कहकर न्यूटन ने कार्यकारण का भेद ही उठा दिया । एक प्राकृतिक घटना 'क' पहले होती है तथा उसकी प्रतिक्रिया 'ख' उसके पश्चात । 'क' तथा 'ख' समान हैं अतः 'ख' तथा 'क' भी समान हैं । निश्चयपूर्वक जितना 'क' को 'ख' का कारण कहा जा सकता है, उतना ही निश्चयपूर्वक 'ख' को भी 'क' का कारण कहा जा सकता है । परन्तु कारण का कार्य पीछे होना असम्भव है । इससे तो ऐसा ही जान पड़ता है कि प्राकृतिक घटनाओं का वास्तविक कारण इन घटनाओं से परे है । प्राकृतिक घटनाओं का परस्पर कार्यकारण-भाव एक भ्रममात्र है ।

तापविज्ञान की खोजों ने प्राकृतिक घटनाओं के पारस्परिक कार्यकारण-भाव पर और भी गहरा आघात किया । पदार्थों के ताप को उनके अन्तर्गत अणुओं की उच्छृंखलगति का बाह्य प्रभाव माना गया । प्रकृति में ताप तथा पदार्थों की प्रत्यक्ष गति के नियमों से ऐसा जान पड़ा कि इन अणुओं की गति उत्तरोत्तर उच्छृंखल हो जाती है तथा अणुओं की उच्छृंखलता में वृद्धि ही प्रकृति का मूल नियम है । प्राकृतिक घटनाओं का वाह्य रूप इन अणुओं के साथ होनेवाली अनियमित घटनाओं की ही समष्टि है । स्पष्ट ही इन सिद्धान्तों से हम प्राकृतिक घटनाओं के कारण के पास नहीं पहुंचते । वास्तविक घटनाएँ तो अणुओं के साथ होती हैं जिनमें कार्य-कारण का सर्वथा अभाव जान पड़ता है । इन घटनाओं की समष्टि यदि अणुओं की परम उच्छृंखलता की ओर जा रही है, जो इनकी स्वाभाविक दशा है, तो आरम्भ में ही यह दशा क्यों नहीं थी ?

उन्नीसवीं शताब्दी में विश्वव्यापी 'ईथर' की कल्पना करके उसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रकार के विकुँचन को ही विद्युत, चुम्बक-शक्ति, ऊर्जा तथा पदार्थ मानकर भौतिक विश्व की सभी प्रकार की घटनाओं को परस्पर कार्यकारण-सूत्र में शृंखलाबद्ध करने की चेष्टा की गयी। अमरीकी वैज्ञानिक माइकेल्सन तथा मौरली ने एक ऐसा यन्त्र बनाया जिससे 'ईथर' में पृथ्वी की गति मापी जा सके। ऐसी किसी भी गति का पता न चला। आइन्सटाइन ईथर का त्याग करके देशकाल तथा दर्शक पर आधारभूत अपने प्रसिद्ध सापेक्षता-सिद्धान्त को वैज्ञानिकों के सामने रखा जिसमें देश तथा काल अलग-अलग सत्ता न होकर एक ही सातत्य के अंश हैं, जिन्हें दर्शक ही अपने व्यक्तित्व द्वारा अलग-अलग करता है तथा प्रत्येक दर्शक इस देशकालिक सातत्य को अपने-अपने ढंग के देश तथा काल में विभक्त करता है। इस सिद्धान्त में भौतिक विश्व का स्वतन्त्र वर्णन असम्भव है। यह वर्णन किसी न किसी दर्शक के सापेक्ष ही हो सकता है। इसी कारण इस सिद्धान्त को सापेक्षता-सिद्धान्त कहते हैं।

आइन्सटाइन के इस सिद्धान्त ने बड़े-बड़े चमत्कार दिखाये। इसमें पदार्थ देशकाल में विकुँचन का केन्द्रमात्र होकर रह गया, तथा गुरुत्वाकर्षण इस विकुँचन का प्रत्यक्ष रूप हुआ। भारी पदार्थों के समीप देशकालिक सातत्य के विकुँचन के कारण प्रकाश की गति विकृत पायी गयी। पदार्थों का गुरुत्व उनकी गति पर निर्भर करता पाया गया। प्रयोगों से यह सब कुछ सिद्ध हुए। सबसे बड़ी बात तो यह निकली कि शक्ति तथा पदार्थ एक ही सत्ता के दो रूप बनकर निकले।

यह प्रगति सचमुच चमत्कारिक है परन्तु यदि विज्ञान का लक्ष्य समस्त प्रकृति को कार्यकारण-सूत्र में विद्ध कर देना है, तो यह लक्षण आज पहले से भी अधिक दूर हो गया है। क्योंकि देशकालिक सातत्य के विकुँचन ये अणु परमाणु, चित्र-विचित्र नियमों का पालन करते जान पड़ते हैं। हाइसेनबर्ग ने अपने अनिश्चितता-सिद्धान्त (Principle of Uncertainty) में आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि किसी भी परमाणु की यदि गति निश्चित हो सकती है तो उसका स्थान सर्वथा अनिश्चित रहेगा तथा यदि स्थान निश्चित किया जायगा तो उसकी गति जानना असम्भव है। अणुओं की गति देशकालिक सातत्य में विकुँचनों की हिलोरों के समान जान पड़ती है। अणु का आकार सीमित है पर उसका स्थान असीम है। अणु-परमाणु तथा ऊर्जा की परस्पर प्रतिक्रिया सर्वथा अनिश्चित तथा उच्छृंखल जान पड़ती है

तथा इन प्रतिक्रियाओं के एकमात्र नियम Quantum Theory (ऊर्जाणु सिद्धान्त) का कोई तार्किक आधार नहीं दीखता । इनका नियमबद्ध प्रत्यक्ष रूप इसी उच्छृंखलता की समष्टि है । इसी आधार पर बीसवीं शताब्दी के विज्ञान का प्रासाद निर्मित हुआ है । इस आधार के थोथापन का वर्णन आधुनिक युग के सबसे बड़े वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने प्रचलित भौतिक विज्ञान के दार्शनिक मैक्स-बोर्न को लिखे गये पत्रों में इस प्रकार किया है ।

In our scientific expectations we have progressed towards antipodes. You believe in the dice-playing God, and I in the perfect rule of law in a world of something objectively existing, which I try to catch in a wildly speculative way. I hope that some body will find a more realistic way, or a more tangible foundation for such a conception, than that which has been given to me. The great initial success of quantum theory cannot convert me to believe in that fundamental game of dice.

I cannot substantiate my attitude to physics in such a manner that you will find it in any way rational. I see of course that the statistical interpretation (the necessity of which in the frame of the existing formalism has been clearly recognised by yourself) has a considerable content of truth. Yet, I cannot seriously believe it, because the theory is inconsistent with the principle that physics has to represent a reality in space and time without phantom actions over distances.[१]

'अपनी-अपनी वैज्ञानिक आशंसा में हम एक दूसरे से सर्वथा विपरीत चले गये हैं । आप उच्छृंखल तथा सर्वथा नियमहीन ईश्वर में विश्वास करते हैं । पर मेरा विश्वास है कि सारी सृष्टि एक ही नियम के धागे में बंधी है तथा इस एक नियम का सभी भौतिक शक्तियाँ पालन करती हैं । भौतिक विश्व

(१) Max Born–Natural Philosophy of Cause and Chance–Oxford—1951.

का अवश्य ही अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है । मैं सी अस्तित्व की एक झलक पाने के लिए इतने प्रकार की परिकल्पनाओं की शरण ले रहा हूँ । मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में सत्य को जानने का कोई न कोई ऐसा मार्ग निकाल लेगा जो मेरे मार्ग की अपेक्षा वस्तुजगत के अधिक समीप होगा तथा जिसकी नींव मेरे सिद्धान्तों की नींव से अधिक दृढ़ होगी । ऊर्जाणु सिद्धान्त उच्छृंखलतापूर्ण दर्शन की प्रारम्भिक आशातीत सफलता मुझे ऐसे सिद्धान्त में कभी भी विश्वास नहीं दिला सकती ।

भौतिक विज्ञानविषयक अपने विचारों की मैं तर्क द्वारा पुष्टि नहीं कर सकता हूँ । मैं मानता हूँ कि इस समष्टि की रीति से भौतिक घटनाओं को समझने में हम सत्य के कुछ पास अवश्य पहुँचते हैं । आपने ही इस रीति की आवश्यकता को सबसे पहले स्वीकार किया । पर मुझे इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं है । भौतिक विज्ञान का ध्येय देशकालिक वास्तविक अस्तित्व का वर्णन होना चाहिये न कि देशकाल में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न वस्तुओं की उच्छृंखल तथा नियमहीन प्रतिक्रियाओं की समष्टि को जानकर सन्तोष कर लेना ।'

बीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े कदाचित अब तक के सबसे बड़े वैज्ञानिक के मत से भौतिक विज्ञान को अब तक देशकाल से परे अनिवर्चनीय शक्तियों से छुटकारा नहीं मिल सका है । प्राकृतिक घटनाएँ एक दूसरे से स्वतंत्र एवं उच्छृंखल हैं । मानों भिन्न-भिन्न देव-दानव अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें घटित कर रहे हों । ऋग्वेद में ही देव-दानवों के एक उद्गम अथवा आधार, अज्ञात तथा अज्ञेय कः देव की खोज की गयी थी । उपनिषद्कार इसी विचारधारा को और भी आगे ले गये । उन्हें इन अनेक उच्छृंखल देव-दानव आदि से सन्तोष न हुआ तथा उन्होंने इस निखिल विश्व के आदि कारण को जानने की चेष्टा की, ठीक उसी प्रकार जैसे आज भी आइन्सटाइन वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा परिपक्व विचारधारा से भी उसी ईश्वर की खोज कर रहे हैं । इतने वैज्ञानिक अन्वेषण हो जाने पर भी भौतिक विश्व के नियमों में ऐसा कुछ भी नहीं मिला है जिससे देवदानव अथवा देवाधिदेव परमेश्वर के अस्तित्व की आवश्यकता न रहे । देव-दानवों द्वारा प्रकृति को समझनेवाली प्राचीन जातियों की चेष्टा उस समय के के लिए अतिशय श्लाघनीय थी तथा आधुनिक खोजों के आधार पर इस चेष्टा को तुच्छ अथवा निम्न समझने का कोई भी कारण नहीं है । वेद, उपनिषद्, महाकाव्य तथा पुराणों के लेखक उसी सत्य की खोज में थे जिसे आज भी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में ढूँढ़ा जा रहा है ।

——:०:——

परिशिष्ट १

ग्रन्थसूची

संस्कृत-ग्रन्थ——

(१) ऋग्वेदसंहिता——मूल–ऋषि–देवतानुक्रमणिका सहित, स्वाध्यायमंडल, किल्लापारडी (जिला सूरत) तथा औंध (जिला सतारा), १९४० ईसवी।

(२) ऋग्वेदसंहिता——सायनभाष्य सहित, वैदिक संशोधन-मण्डल, पूना, खंड १–४ सन् १९३३ से सन् १९५१ पर्यन्त प्रकाशित।

(३) यजुर्वेदभाष्यम्——स्वामी दयानन्द सरस्वती; संवत् १९७८, सन् १९२१ ईसवी।

(४) अथर्ववेदसंहिता——सायनभाष्य सहित, संपादक शंकर पांडुरंग, निर्णय सागर प्रेस, सन् १८९५ ईसवी (बम्बई-सरकार द्वारा प्रकाशित)।

(५) निरुक्तम्——मुकुंद झा बख्शी प्रणीत विवृति समेत–निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३० ईसवी।

(६) शतपथब्राह्मणम्——कलकत्ता रायल एशियाटिक सोशायटी द्वारा प्रकाशित, संवत् १९६०।

(७) तैत्तिरीयब्राह्मण——मैसूर गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी सिरीज, सन् १९०८ ईसवी।

(८) ऐतरेयब्राह्मण——तिरुवांकुर-विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, तिरुवेन्द्रम्, सन् १९४२ ईसवी।

(९) छान्दोग्योपनिषद्——आनन्दाश्रम, पूना, सन् १९१३ ईसवी।

(१०) वृहदारण्यकोपनिषद्
(११) विष्णुपुराण
} गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् १९९९ तथा २००८–९।

(१२) श्रीमद्भागवत महापुराण--गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २००६ ।

(१३) दुर्गासप्तशती } गीताप्रेस, गोरखपुर,

(१४) अध्यात्मरामायण } संवत् २००६ ।

(१५) श्रीमद्वालमीकीय रामायण--स्वाध्यायमंडल, किल्लापारडी (जिला सूरत) तथा औंध (जिला सतारा), सन् १९४६ ईसवी ।

(१६) आर्यभटीय-ठाकुर उदयनारायण सिंह--शास्त्र-प्रकाशन-भवन, मथुरापुर, विद्दूपुर, मुजफ्फरपुर, सन् १९०६ ईसवी ।

(१७) कौशिक गृह्यसूत्रम्--प्रकाशक स्वर्गीय श्री ठाकुर उदयनारायण सिंह, शास्त्र-प्रकाशन-भवन, मथुरापुर, विद्दूपुर, मुजफ्फरपुर, सन् १९४२ ईसवी ।

(१८) गोभिल गृह्यसूत्रम् -- सन् १९३४ ईसवी ।

(१९) खदिर गृह्यसूत्रम् -- सन् १९३४ ईसवी ।

हिन्दी-ग्रन्थ--

(१) दर्शन-दिग्दर्शन श्री--राहुल सांकृत्यायन--किताब-महल, इलाहाबाद, सन् १९४४ ईसवी ।

मराठी-ग्रन्थ--

(१) भारतीय ज्योतिष शास्त्र--शं० बा० दीक्षित, आर्यभूषण प्रेस, पूना ।

अंग्रेजी-ग्रन्थ--

1. Mythology of All races--Indian. by A. B. Keith; Iranian. by A. J. Carnoy; Markhal Joanes Company, Boston, U. S. A., 1917.
2. Myths of Babylon and Assyria. } By Donald A. Mackenzie -- Gresham Publishing Company.
3. Egyptian Myth and Legend. }
4. Myths of China and Japan. }
5. Worlds in Collision--by Immanual Velikoverky, Victor Gollanze, London--1952.
6. Prehistoric India--by Piggott, Penguin Books, 1950/52.
7. Early Astronomy and Cosmology--by C. P. S. Menon-George Allen and Unvin, London--1932.
8. Natural Philosophy of Cause and Chance--Max Born, Oxford University Press--1951.

9. Bali—By Max Bajetto—
W. Van Hoeve Ltd,
The Hague, Netherlands.
Bandeorg—Indonesia.

10. The Island of Bali—by Mignel Covarrulias–Cassall and Company Ltd., London—1937.

11. Essays on the Religion of the Parsis–Haug–Trilmer's Oriental Series—1878.

12. Contributions to the Science of Mythology–Max Müller–Longman Green—1897.

13. Religion and Philosophy of the Veda–Keith, Harvard—1925.

14. Hymns of Zoroaster–K. S. Guthrie—London, George Bell & Sons.

15. Zoroastrian Theology–Dhalla—1914.

16. Myths of the Hindus and Buddhists–Sister Nivedita & Ananda Coomaraswamy–London, George G. Harrap & Co.—1913.

17. Introduction to a Science of Mythology–Jung and Uevoenyi–Routledge and Kegan Paul–London, 1951.

अनुक्रमणिका